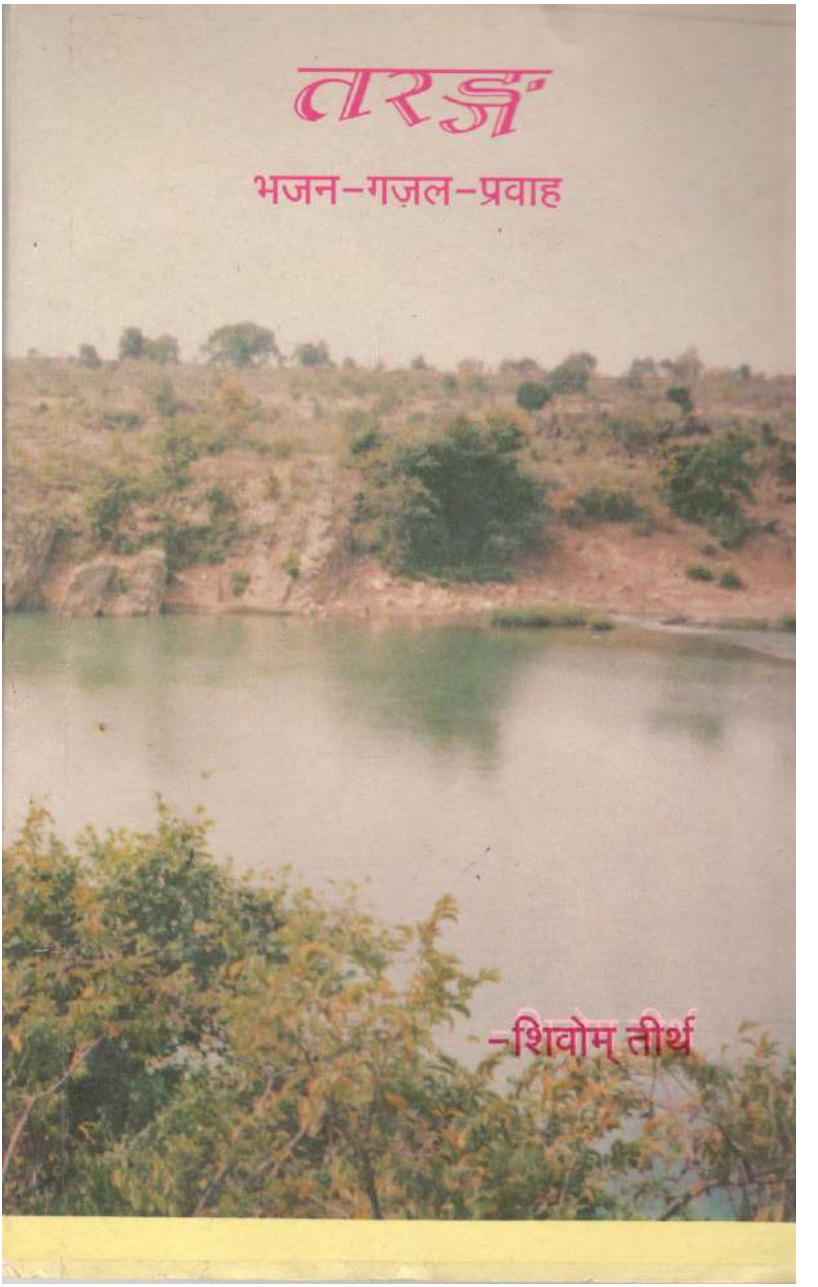
तरङ्ग
भजन-गज़ल-प्रवाह
-शिवोम् तीर्थ

तरङ्ग

(भजन गजल प्रवाह)

रचयिता

शिवोम् तीर्थ

प्रकाशक :-

श्री नारायण कुटी संन्यास आश्रम

देवास (म. प्र.)

प्रथम संस्करण १९९६

संख्या

३००० **प्रतियाँ**

मूल्य : २० रूपये

फोटो टाईप सेटिंग : स्टार कम्प्यूटर्स एण्ड ग्राफिक्स

30, खजूरी बाजार इन्दौर

:545873, 452107

मुद्रक : अनय ग्राफिक्स, 49, चाणक्यपुरी, अन्नपूर्णा रोड, इन्दौर

भूमिका

मेरा काव्य-प्रस्फुटन तो काफी पहले २२-२४ वर्ष की आयु में ही आरम्भ हो गया था । यद्यपि मेरी मातृ-भाषा पंजाबी थी, किन्तु वह युग उर्दू का था। पंजाबी अथवा हिन्दी का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। सभी समाचार-पत्र, पत्राचार तथा शासकीय काम-काज उर्दू माध्यम से ही होता था । सारांश यह कि उस समय का वातावरण पूर्णतया उर्दूमय ही था । मेरी शिक्षा का माध्यम भी उर्दू ही था । अतः यह स्वाभाविक ही था कि काव्य-भाव भी सर्व प्रथम उर्दू में ही प्रस्फुटित हुए। मेरे ऊपर आध्यात्मिकता मुख्यतया मेरी माता की ही देन है । वह छोटे-छोटे उदाहरण दे देकर मुझमें आध्यात्मिक भाव जाग्रत करती रहती थी। प्रारम्भ में भजन- गायन तथा जप ही मेरी साधना का मुख्य आधार थे। संगीत की तो मुझे कुछ समझ भी नहीं, मैं तो अपने भाव तथा मस्ती में ही गाता था । विश्व-विख्यात स्वामी राम तीर्थ के भजनों तथा गज़लों का संग्रह, जिस का नाम 'राम वर्षा' है, मेरी प्रियतम पुस्तक थी। नदी किनारे (सतलुज) घण्टों बैठ कर | भजन तथा गज़लें गाया करता था । उर्दू का अभ्यास होने से स्वाभाविक ही, गज़लों की ओर विशेष रुचि थी। धीरे-धीरे मेरे अन्तर से भी कुछ आध्यात्मिक गज़लों का प्रस्फुटन आरम्भ हो गया । अतः मैंने दो चार गज़लें लिखीं तथा अपने मित्रों को भी सुनाई। उन्होंने भी पसन्द किया । जैसे एक गज़ल का आरम्भ था-

हम किनारे आ गए लेकिन किनारा न मिला
वह तो किनारे हो गए हम को सहारा न मिला
उन से बिछड़े मुद्दते बीती, मगर वह सितमगर
बारहा वायदे किए, फिर भी दोबारा न मिला

इसी प्रकार एक अन्य गज़ल थी-

आ रही बादे - सबा लाती पयामे-प्यार है
की लाती पयामे प्यार में इनकार है इकरार है

अपने नकायस देखिए तो यार का इनकार है
गर उसकी खूबी देखिए, तो यार का इकरार है

दूसरी एक और गज़ल का आरम्भ इस प्रकार था-

बेखुद बनाया हम को पिला के शराब है
खुद मुंह छुपाए बैठा है, जेरे नकाब है

कुछ दो एक गज़लें और थीं, जिन्हें कालक्रम से मैं अब भूल चुका हूँ। किन्तु काव्य प्रस्फुटन का काल अत्यन्त ही अत्यल्प रहा। एक तो मेरी रुचि साधना की ओर बढ़ चली तथा कुछ व्यावहारिक-सांसारिक परिस्थितियों के कारण, मैं काव्य-रचना से दूर हो गया। फिर मैं हिमाचल प्रदेश की सुकेत स्टेट में, सतलुज किनारे एक कुटिया में रहने लगा तथा वहां साधना में तल्लीन हो गया। पहले तो गुरु की आवश्यकता कभी अनुभव ही नहीं की, किन्तु साधना की कठिनाइयों ने गुरु की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया तथा मैं किसी उपयुक्त गुरु की तलाश में रहने लगा। दैव योग से १९५९ में, मेरी भेंट ब्रह्मलीन श्री स्वामी विष्णु तीर्थ महाराज से हुई, जिनका नारायण कुटी नामक आश्रम देवास (म.प्र.) में स्थित था। मेरे मन को भी वे भा गए तथा उन्होंने भी अपार कृपा कर मुझे दीक्षित करने तथा आश्रम में आकर रहने की स्वीकृति प्रदान कर दी। मध्यप्रदेश में स्थानान्तरित होकर मैं पंजाबी तथा उर्दू से एक दम कट गया। एक भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वैसे भी हिन्दी का प्रचार बढ़ चला था, दूसरे मध्यप्रदेश हिन्दी भाषी होने से सभी कार्य, बोलचाल, पत्र-व्यवहार तथा समाचार पत्र आदि सभी कुछ हिन्दी में था। मेरे लिए पंजाबी तथा उर्दू दोनों बेकार हो चुके थे। अब सभी कार्य व्यवहार हिन्दी में था। मेरे लिए आरम्भ में कुछ कठिनाई आई किन्तु फिर मैंने लोगों के बोलने का ढंग, उच्चारण तथा शब्दावली की ओर विशेष ध्यान दिया। एक प्रकार से हिन्दी भाषा का मेरा गुरु जन-समाज ही है। श्री गुरु महाराज के प्रवचन भी हिन्दी में होते थे। कुछ समाचार-पत्र तथा शास्त्रों का अध्ययन भी आरम्भ

कर दिया। इससे मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया। किन्तु आश्रम में कार्य की अधिकता से मेरे अन्दर का काव्य-भाव प्रसुप्त ही बना रहा। यद्यपि श्री गुरु महाराज के शरीर के वर्तमान रहते ही १९६९ तक मैंने गद्य में चार पुस्तकों, साधन पथ, गुरु परम्परा, श्री नारायण उपदेशामृत तथा योग विभूति की रचना कर दी थी, किन्तु काव्य की ओर ध्यान नहीं गया। १९६९ में श्री गुरु महाराज के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् आश्रम का उत्तरदायित्व मुझ पर आ गया। फिर तो प्रवास, प्रवचन, पत्राचार, दीक्षा, आश्रम व्यवस्था तथा लोगों से मिलने-जुलने में ही व्यस्त होकर रह गया। मेरे अन्दर कवि सोया ही रहा।

वैसे तो श्री गुरु महाराज के जीवन काल में ही सेवा कार्य की अधिकता रही किन्तु उनके जीवन-काल के अन्तिम दो वर्ष उनकी अस्वस्थता के कारण, चौबीस घण्टे का ही कार्य हो गया तथा ब्रह्मलीन हो जाने के पश्चात तो मानों कार्य की बाढ़ ही आ गई। यद्यपि इस बीच भी कुछ गद्यात्मक रचनाएँ की किन्तु फिर भी १९९० तक काव्य प्रस्फुटन की ओर से उदासीन ही बना रहा। तब तक हिन्दी का भी कुछ ज्ञान अर्जित कर चुका था।

१९९० में मेरे अन्दर एकाएक काव्य प्रस्फुटन होने लगा। अन्तर में पिछले ५० वर्ष से सोया कवि जाग उठा। अन्तर केवल इतना ही था कि पहले माध्यम उर्दू था, अब हिन्दी हो गया। मैंने पहला भजन लिखा-

मान ले मेरा कहना रे मन, काहे को भरमाए है।
विषयों में सुख नहीं मिलेगा, काहे को दुःख पाए है।

और दूसरा-

हे कुण्डलिनी मां जगदम्बा, जागो, जागो, जागो, जागो।
हे मूलाधार निवासिनी मां, जागो, जागो, जागो, जागो॥

फिर तो भजनों तथा आध्यात्मिक गज़लों का अन्तर से ऐसा स्रोत फूट निकला कि अभी तक थमने का नाम ही नहीं लेता। अब तक कोई दो

हज़ार से अधिक भजन तथा गज़लें लिखी जा चुकी हैं किन्तु अभी यह क्रम बन्द नहीं हुआ। मातृ-भाषा पंजाबी तथा उर्दू की भी कुछ रचनाएँ लिखी गई हैं, किन्तु अधिकांश भजन हिन्दी में ही हैं। अब तो मेरे गद्य-लेखन, गद्य-रचना तथा प्रवचन की भाषा से लोगों में यह भ्रम हो गया कि मैं हिन्दी पढ़ा हुआ हूँ। किन्तु यह सब गुरु- महाराज की कृपा का ही फल है जो मैं पद्य रचना के साथ-साथ गुरु-गीता, पातंजल योग दर्शन तथा नारद-भक्ति-सूत्र जैसे ग्रन्थों पर टीका लिख सका। इन भजनों की भाषा भी ऐसी है कि प्रायः मेरी बोल-चाल अथवा लेखन में कहीं प्रयुक्त नहीं होती। अधिकांश भजन हिन्दी में ही हैं। पंजाबी तथा उर्दू अब मेरी स्वाभाविक भाषाएँ नहीं रहीं। उनका स्थान अब हिन्दी भाषा ने ग्रहण कर लिया है। उर्दू तो फिर भी लोग गाते-समझते हैं, किन्तु मैं जिस क्षेत्र में हूँ, उसमें पंजाबी जानने वाले नगण्य ही हैं। अतः पंजाबी भजन लिखने की ओर रुझान भी कम ही है।

काव्य कवि के हृदय की तरंग है, भावना है, कल्पना है तथा उड़ान है। कवि भावना-लोक में ही अधिकतया रमण करता है। वह बाहर जगत में विचरण करते हुए भी, अन्तर लोक में ही खोया रहता है। काव्य उसके अन्तर्हृदय को चीरकर, बाहर प्रस्फुटित होता है। कवि के अन्तर्हृदय का करुणामय चीत्कार, पूर्णतया तो बाहर प्रकट हो ही नहीं पाता। उसके अन्तर का आनन्द, हृदय की कसक, पश्चाताप की अग्नि वियोग की पीड़ा को कवि ही अपने अन्तर में अनुभव कर पाता है। बाहर का काव्य केवल छलके हुए जल के समान होता है। वास्तविक काव्य तो पश्यन्ति तथा मध्यमा स्तर पर ही सीमित रहता है। उसे वैखरी के द्वारा व्यक्त कर पाने में कवि स्वयं भी असमर्थ होता है। फिर जब काव्य आध्यात्मिक रूप लिए होता है तो वासनामय तथा स्वार्थी जगत उसकी अन्तर्वेदना को भला कैसे समझ सकता है ?

जब कवि केवल बौद्धिक - कल्पना, एवं मानसिक भावना से ऊपर उठकर, साधक-कवि के रूप में प्रकट हो जाता है तो वह अनुभवात्मक हार्दिक वेदना के भावमय धरातल पर नीचे उतर जाता है। वह दृश्यमान जगत की सुख-सुविधाओं से उदासीन होकर, अन्तर्गगन में स्वाभाविक उड़ान भरने लगता है। उसके अन्तर में भाँति-भाँति के भाव स्वतः ही अनायास उदय होने लगते हैं। भावना तथा भाव में महान अन्तर है। भावना करना पड़ती है किन्तु भाव अन्तर से स्वाभाविक ही उदय होता है। बौद्धिक कवि भावना तथा कल्पना प्रधान होता है तो साधक-कवि भाव प्रधान । भावना से भाव कहीं अधिक उच्च स्तर का होता है। भावना को वैखरी से व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु भाव तो पश्यन्ति अथवा मध्यमा का विषय है जिसे साधक कवि अन्तर में अनुभव करता है। अतः वास्तविक भावात्मक-काव्य साधक-कवि के अन्तर में, पश्यन्ति अथवा मध्यमा के रूप में ही उमड़ घुमड़ कर रह जाता है। वैखरी काव्य तो केवल मात्र कुछ बाहर उछल कर गिरे जल के छीटों के ही समान होता है।

वैसे तो साधक-कवि में अनेकों प्रकार के भाव उदय होते हैं किन्तु वियोग तथा मिलन, यह दो भाव मुख्य हैं। वियोग में तड़प होती है तो मिलन में आनन्द। किन्तु साधक-कवि वियोगात्मक तड़प में भी आनन्दानुभूति करता है। उसका हृदय यदि वियोगाग्नि में जलता है तो वह जलते रहने में ही सुख मानता है। यदि उसके मन में प्रभु की याद बनी बनी रहती है, तो वह उस याद को सदैव बनाए रखना चाहता है । तथा उस याद में उसके नयनों से अश्रुपात होता रहता है तो वह सदा रोते ही रहना चाहता है। उसे मिलन की अपेक्षा वियोग की पीड़ा कहीं अधिक सुखकर प्रतीत होती है। वह भगवान से यही प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! आप मिलो या नहीं, किन्तु आप की याद हर समय बनी रहे।

छोड़ गए पीरा हिरदय में, सज्जन जाते-जाते मोरे
पीरा खाय रही हिरदय को, बुझत अगन न अन्तर मेरे

दशा भयी है ऐसी मोरी, मन न लागे, पीव मिले न
कसकत रहत, 'बहाऊं अंसुअन, क्या प्रभु कीना अन्तर मेरे

फिर कहा-

रात बितावत जागि जागि करि, करत प्रभु की याद ही रहता
पिव समाया मन में ऐसा, घर ही प्रभु का हृदय बना वह

प्रेम के वियोग का अन्य स्वरूप भी है जिसमें प्रभु-मिलन की चाह बनी रहती है। भक्त भगवान के दर्शन पाने के लिए तड़पता है, रोता है, विनय करता है। वह प्रार्थना करता है कि प्रभु ! तेरे मिलन से ही यह विरह-अग्नि शान्त हो सकती है। तुम्हारे बिना जगत में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। जैसे-

साजन तेरे कारण मैंने, धार लिया वैरागा
इक तेरा दर्शन ही चाहूं, नहीं दूजा मन रागा
नयना रहते जपत निरन्तर, अंसुअन माला नाम तेरे
बहती धारा प्रेम की अन्तर, कसक तेरे मन लागा
नाम तेरे पर भयी विरागिन, नाम ही रहत समाई
नाम छोड़ मनवा नहीं चंचल, मनवा नाम ही लागा

एक और -

मैं मनाऊं तुम को प्रीतम, मान जाओ, मान जाओ
छोड़कर शिकवे गिले सब, मान जाओ, मान जाओ
मैं अजानी, तू सयाना, भूल मुझ से ही हुई है
मन लगाया जग में मैंने, मान जाओ, मान जाओ
रख दिया दुनिया में मुझ को, ठोकरें खाई बहुत हैं
अब हैं मैंने कान पकड़े, मान जाओ, मान जाओ

अब ज़रा मिलन का आनन्द भी लीजिए। मिलन के आनन्द में भक्त मतवाला होकर झूम उठता है । तृष्णा-वासना से मुक्त हो जाता है। सारे संसार में प्रभु की सर्वव्यापकता ही अनुभव होने लगती है ।

दर बदर भटका किए हम, पर न पाया दर कहीं
सिर जहां हमने झुकाया, दर मिला हम को वहीं
हम भी भटके दर बदर थे, ढूँढते दर थे तेरा
जब तेरा दर मिल गया, तो मिल गया दिल में यहीं

एक और गज़ल-

जब मिला दिलदार अन्दर, मिल गया वह हर कहीं
जब नहीं ज़ाहिर था अन्दर, वह कहीं दिखता नहीं।
वह बसे है ज़र्रा-ज़र्रा, परदा पर अन्दर पड़ा
जब हटे परदा न अन्दर, वह दिखे कैसे कहीं

अब ज़रा भक्त के आनन्द की भी एक छटा देखिए-

आदि अन्त मध्या आनन्दा, आनन्दा है सकल आनन्दा
ऊपर नीचे सभी आनन्दा, बंध मुक्त है सकल आनन्दा
जगत प्रसारत सकल आनन्दा
ज्ञान और अज्ञान आनन्दा, उठत-बैठत सकल आनन्दा
चलत फिरत देखत आनन्दा, खावत धावत सकल आनन्दा
जगत प्रसारत सकल आनन्दा
सुख में दुःख में सभी आनन्दा, भोगत सोवत सकल आनन्दा
ज्ञान ध्यान साधन आनन्दा, कहन सुनन है सभी आनन्दा
जगत प्रसारत सभी आनन्दा
तीर्थ शिवोम् है मन आनन्दा, तन इन्द्रिन में सकल आनन्दा
जग में कण-कण प्रभु समाया, फिर न क्यों हो सकल आनंदा
जगत प्रसारत सकल आनंदा

किन्तु उपरोक्त पंक्तियां आन्तरिक अनुभूतियों का प्रकटीकरण करने में असमर्थ हैं। कबीर ने ज्ञान की जिन आन्तरिक ऊँचाइयों को छुआ अथवा उन्हें अनायास ही जिन यौगिक प्रक्रियाओं की अनुभूति हुई, या मीरा ने जिस अलौकिक एवं निश्चल प्रेम का रसास्वादन किया, क्या उनके भक्त तथा अनुयायी, केवल उनकी वाणियों के पठन तथा गायन से उस ज्ञान तथा प्रेम को लूट सकते हैं? कदापि नहीं। इससे उनके मन में भावना तो पैदा हो सकती है, भाव नहीं। भावना जहां बाह्य प्रयत्न की अपेक्षा रखती है वहां भाव आधार, पूर्व संचित शुभ संस्कार होते हैं। भावना मन-मस्तिष्क को प्रभावित करती है तो भाव हृदय को तरंगित । वैखरी वाणी जल की एक बूंद के समान है, यह अलग बात है कि पाठक या गायक उसे ही समुद्र समझ बैठते हैं।

विरह तथा मिलन के भावों की ही भाँति पश्चाताप भी भाव के रूप में ही हृदय में उदय होता है। शास्त्रों के पठन-पाठन, सत्संग एवं भजनों के गायन से उसे भावना के रूप में, मन तथा हृदय में, उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है । किन्तु प्रयत्न तो प्रयत्न ही है । मन तथा हृदय पर उसका क्षणिक प्रभाव ही पड़ पाता है। यदि पश्चाताप भाव के रूप में अनायास ही हृदय में उदय होता है तो हृदय तड़प उठता है । अपने बीते हुए व्यर्थ जीवन की स्मृतियाँ अन्तर को झकझोर कर रख देती हैं। साधक रुदन को रोक नहीं पाता। यदि ऐसे में कोई कवि-हृदय हो, तो पश्चाताप् काव्य के रूप में फूट पड़ता है । पश्चाताप् की उस अग्नि में जैसा साधक-कवि का अन्तर झनझना उठता है, वैसा अन्यों का नहीं । पश्चाताप् के लिये वैसे तो कोई आयु-सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, किन्तु फिर भी यह, जीवन के अन्तिम चरण में अधिक उदय होता है। जब बीता हुआ जीवन मनुष्य के सामने होता है, जीवन का वासनामय काल व्यतीत होकर, इन्द्रियों में शिथिलिता आ जाती है। मन अधिक चंचल हो जाता है, बच्चे अपना स्वंतत्र रास्ता पकड़ लेते हैं, मनुष्य को कई प्रकार के रोग आ घेरते हैं, मृत्यु समक्ष दिखाई देने लगती

है। तब व्यर्थ किए कर्मों को याद कर पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है। इसमें पूर्व संचित संस्कारों का बड़ा योगदान है, परन्तु साथ में विवेक के संस्कारों का होना भी आवश्यक है, अन्यथा मन जगत में ही भ्रमित होता रहता है ।

पश्चाताप् साधन का महत्त्वपूर्वक अंग है। जब वह साथ-साथ साधक-कवि के हृदय में काव्य रूप में भी प्रवाहित होने लगता है तो साधन में इसका योग-दान बहुत बढ़ जाता है। तब साधक का मन, किए हुए पाप कर्मों से चीत्कार कर उठता है। उसे अपने दोषों तथा अवगुणों से घृणा होने लगती है। उनसे छुटकारा प्राप्त करने के लिए छटपटाने लगता है । प्रभु से, छुटकारे के लिए प्रार्थना करता है। प्रभु के आगे रो रोकर, गा गाकर विनय करता है, क्योंकि उसे अपने अनुभव से यह बात समझ आ जाती है कि इसके लिए प्रभु कृपा आवश्यक है।

मोड़ अन्तिम वेल का है, भी निकलता जा रहा
जो चढ़ा सूरज गगन में, वह है ढलता जा रहा

है समय के साथ ही, अन्तिम समय अब आ रहा
कुछ तो बीता जा चुका, बाकी है बीता जा रहा
ज़िन्दगी चलती रही, अपनी डगर पर राह पर
जो मिला पहचान का भी, वह गुज़रता जा रहा
दुश्वारियां नाकामियां ही, बस रहा मैं झेलता
पीर सहता, तड़पड़ाता, मैं हूं जलता जा रहा
तीर्थ ऐ शिव ओम् तू न, कर गिला शिकवा कोई
कट गई कुछ कट रही, जीवन यह ढलता जा रहा

एक अन्य उदाहरण देखिए-

सोचत सोचत जीवन बीता, अब भी सोचत रह्या है जाई
रोवत रोवत जीवन बीता, अब भी रोवत रह्या है जाई
खावत खावत अन्न खुटाया, अब भी खावत रह्या तू जाई

भोगत भोगत निर्बल इन्द्रिन, अब भी भोगत रह्या तू जाई
देखत देखत जगत विषय को, अब भी देखत रह्या तू जाई
बोलत बोलत थाकी रसना, अब भी बोलत रह्या तू जाई
तीर्थ शिवोम् कटा दुख ही में, अब भी सहन करत तू जाई
न पछताए करनी अपनी, अब भी करत रह्या तू जाई

और फिर-

जीव प्रलाप करत दुख पावे, पर जग नहीं तियागे
फिर फिर भ्रमता भोगन में ही, विषयन को ही भागे
काम क्रोध मद लीन सदा ही, सिमरन राम करे न
लगा रहे जग के ही कारज, जग ही भागे-भागे

विनय, वियोगात्मक विरह एवं पश्चाताप का सम्मिलित रूप है । जिसमें भक्त अपने पापों, अवगुणों, दोषों तथा विकारों को स्वीकार करता है। जगत के प्रति प्रवृत्त हो जाने की अपनी भूल को मानता है तथा प्रभु की सर्व शक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता एवं सर्वहितकारी स्वरूप पर श्रद्धा करते हुए कृपा की प्रार्थना करता है। कभी-कभी आवेश में आकर, प्रभु को उपालम्भ भी दे बैठता है । विनय का उदाहरण देखिए-

होता रहे गायन तेरा, अन्तर में मेरे हे प्रभु
सुनता रहूं, सुनता रहूं, सुनता रहूं मैं हे प्रभु
मन न जाए हट मेरा, दूजे किसी भी ओर को
इक तेरे गुणगान में ही, मन लगा मेरे प्रभु
हो रहा गायन तेरा है, जग के कण कण में रमा
जीव के अन्दर भी बाहर, हो रही वर्षा प्रभु
मैं तो बंधन में पड़ा, पर तू छुड़ावनहार है
सुन तेरी उन्मुक्त वाणी, मैं भी छूटूं हे प्रभु

अब ज़रा उपालम्भ का भी उदाहरण देखिए-

हमरी ओर नहीं क्यों देखत
हम तो देखते रहें तुम्हीं को, दूजी ओर रहे क्यों देखत
और न आश अनेकों और न, हमको आश तेरी ही
ऐसा हृदय कठोर किया तुम, एक भी बार नहीं क्यों देखत
गगन बिछाऊं सेज तुम्हारी, पुष्प अति मन मोहक
आवत पर तुम कबहूं नाही, आए नहीं क्यों मोहे देखत

उपालम्भ तथा रूठने का अधिकार हर एक भक्त को प्राप्त नहीं होता। जो प्रभु का अनन्य भक्त हो, प्रभु को छोड़ कर किसी दूसरी ओर उस का लक्ष्य जाय ही नहीं। वही प्रभु को ऐसा उपालम्भ दे सकता है कि हृदय इतना कठोर क्यों किए बैठे हो? मेरी ओर क्यों नहीं निहारते ? मुझ पर प्रसन्न होकर, कृपा क्यों नहीं करते ? मैं तो हर समय हृदय रूपी सेज को तुम्हारी ही प्रतीक्षा में सजाए, उस पर सुंगधित पुष्प बखेरे, तुम्हारी ही आने की राह निहारती रहती हूँ, पर एक तुम हो कि इधर ध्यान ही नहीं देते। कैसे निष्ठुर हो तुम? हे प्रभु! मैं तेरे मिलन की ही प्यासी हूँ। तुम आकर मेरी प्यास क्यों नहीं बुझाते।

ऐसा कोई, प्रभु का अनन्य भक्त ही, जिसने जगत में रहते हुए भी, मन को जगत से पूर्णतः हटा लिया है, कह सकता है। जगत में फंसा हुआ भक्त तो ऐसा उपालम्भ देने का न अधिकार ही रखता है, न उसकी स्थिति ही ऐसी होती है। वह तो अपने अन्तर में, अभी, प्रभु के प्रति, प्रेम जाग्रत करने के प्रयत्न में ही लगा होता है। अनन्य भक्ति में दीनता तथा विनम्रता मुख्य होते हैं जो कि अहंकार के त्याग के बिना संभव नहीं। अहंकार ही सब व्याधियों की जड़ है। मन के बाकी के सभी विकार, काम, क्रोधादि, अहंकार की ही संतान हैं। इस तथ्य को भजनों में स्थान-स्थान पर व्यक्त

किया गया है। तथा उससे पीछा छुड़ाने का आग्रह किया गया है। साधकों में प्रायः अहंकार की मात्रा, संसारियों की अपेक्षा, अधिक ही होती है। अहंकार को समाप्त करने के लिए पहले उसके सहायकों-रक्षकों की समाप्ति आवश्यक है। यदि शक्ति के प्रसव क्रम में अहंकार प्रथम उदय होता है तो प्रतिप्रसव क्रम में प्रारब्ध एवं काम क्रोधादि विकारों का सर्व प्रथम सामना करना पड़ता है, जिसे भजनों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

अहंकार, वासना तथा विकार, चित्त को मन के रूप में तरंगित कर, उसे शुभाशुभ कर्मों के प्रति प्रेरित करते हैं। मन, चेतना-शक्ति की, चित्त के आधार पर, संकल्प-विकल्पात्मक क्रिया का नाम है, जो चित्त वृत्ति के अनुरूप ही उदय होती है। इस अहंकार को समाप्त करना या मन को मारना, अथवा वासना का क्षय करना, या वृत्ति का नाश करना, बहुत कुछ एक ही बात है। मन को उपद्रव की जड़ कहा गया है, किन्तु मन जहां बंधन का कारण है, वहीं मुक्ति का हेतु भी है। जगत के संसारी जीवों का मन प्रायः अशुद्ध होता है, इसलिए मुक्ति-प्रदाता मन की कल्पना करना उनके लिए असम्भव प्रायः है। किन्तु भजनों में शुद्ध तथा अशुद्ध दोनों प्रकार के मनों का उल्लेख किया गया। जहां एक ओर अशुद्ध मन का लक्ष्य जगत से हटना कठिन है वहीं शुद्ध मन, प्रभु की याद में एकाग्र बना रहता है। फिर भी अधिक विस्तार से अशुद्ध मन का ही वर्णन है, क्योंकि वही जीव की समस्या है।

जीव-चित्ताशय में अधिक संस्कार-संचय तम-रज युक्त संस्कारों का ही है जिस कारण उसमें वासना भी तम-रज- युक्त ही अधिक होती है तथा चित्त-वृत्ति भी जगदाभिमुखी, जड़ तथा परिवर्तनशील जगदात्मक ही होती है। फिर भला शुद्ध मन के उदय का प्रश्न ही कहां उठता है। वह पूर्णतया चंचल, अस्थिर, तथा जड़ मन ही होता है, जिसे जड़ जगत ही भासित होता रहता है। ऐसा मन सदैव ही जीव को भ्रमित किए रहता है,

दुःख में सुख की भावना, अपवित्र में पवित्र की कल्पना, अनात्म में आत्म के दर्शन, तथा अनित्य में नित्यता का भाव बनाए रखता है । वह जीव को, कर्म चक्र में ऐसा जकड़ लेता है कि उसका उसमें से निकल पाना असंभव हो जाता है । उसकी बुद्धि का विवेक मानसिक संकल्प-विकल्प में दब कर रह जाता है। जीव विवेक की उपेक्षा कर, मन, जो कि वासनामय रूप धारण किए होता है, का अनुगामी बन कर रह जाता है। ऐसे अशुद्ध मन का वर्णन भजनों में प्रचुर मात्रा में किया गया है, यद्यपि शुद्ध मन भी उपेक्षित नहीं रखा गया है।

अशुद्ध मन-

चित्त का फैलाव दुनिया, चित्त ही दुनिया बने
जिस तरह का चित्त हो वैसी ही फिर दुनिया बने
कोसता है आदमी दुनिया को दुखों के लिए
यह न जाने चित्त ही, दुनिया का सुख-दुख है बने

यश-अपयश, अनुकूलता - प्रतिकूलता आदि सभी आन्तरिक मन के संस्कारों का बाह्य प्रकटीकरण-मात्र होता है। इसीलिए योग दर्शन संस्कारों को अन्तराय कहता है । यदि कोई किसी को सुख-दुख देता है तो वह केवल उसका माध्यम होता है, कारण नहीं । कारण तो संस्कारों-अन्तरायों का अन्तर में मन का रूप धारण कर अन्दर से ही खेल करता रहता है। जीव इस बात को समझ नहीं सकता तथा प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत को ही कारण समझ बैठता है ।

जा मन राम भजन है नाहीं, ता मन मरघट समझो जानो
जग-तृष्णा की जलत अगन है, तखत बिना राजा ही जानो
जा मन अन्दर दीप जले है, रहता सदा उजाला
दीपक नाहीं घोर अंधेरा, आतम राम कहां पहचानों

मन तो जीव को, जगत की वासनाओं- तृष्णाओं तथा मेरे तेरे की ओर खेंचे लिए जा रहा है। अपनी ओर अन्दर की ओर झाँकने-देखने का, पल भर के लिए भी अवसर प्रदान नहीं करता। पल-पल आशा-निराशा में ही मरता - जीता रहता है। मन, एक ऐसे श्मशान का रूप धारण किए है जिसमें इच्छाओं-कामनाओं के शव धड़ाधड़ एक के बाद एक, जलते ही रहते हैं। किन्तु मन, फिर भी हठ का त्याग नहीं करता। एक के बाद एक दूसरी कामना खड़ी करता रहता है। सुख-दुख भोगता ही रहता है। वह एक ऐसे राजा के समान है जिस के पास आनन्द का अखण्ड भण्डार भरा पड़ा है, किन्तु वह उस आन्तरिक राज-वैभव को त्याग कर भिखारी बना, भटकता फिरता है। जिस मन में आत्म ज्योति का प्रकाश हो, वह तो सदा ही आन्तरिक आनन्द से आलोकित बना रहता है। अन्यथा अंधकार ही अंधकार, तथा दुख ही दुख मन में छाया रहता है। ऐसा अस्थिर मन, अपना लक्ष्य सदैव जगत-विषयों पर ही केन्द्रित करने में लगा रहता है। न वह कभी आत्मा की ओर अभिमुख होता है, न ही आत्म-ज्ञान-प्राप्ति की ओर आगे बढ़ सकता है।

शुद्ध-अशुद्ध मन-

जो मनवा बन जाय निर्मल, उससे बड़ा सपूत न कोई
जो मन रहे मलीन सदा ही, उससे बड़ा कपूत न कोई
जो मन जाय जग में भटका, करत अनर्थ अधर्म ही रहता
जो मन लागे हरि चरन में, दूजा देव-दूत न कोई
जब मनवा आवे भ्रम माहीं, भ्रम ही भासित सकल जगत में
जग कैसा, पर दीखे कैसा, उससे बढ़कर लूट न कोई
बना विभक्त जो मनवा जग में, नाना रूप दिखाई देते
एक को पकड़े, दूजे छोड़े, इस से बढ़ कर फूट न कोई

ठीक ही तो है। जो मन एक आज्ञाकारी पुत्र की भाँति, प्रत्येक विवेकयुक्त निर्णय को स्वीकार कर, उसका पालन करता रहता है, सदैव वश में रहता है, बे-लगाम घोड़े की तरह विषयों के ही पीछे नहीं भागता रहता, वही सबसे बड़ा सपूत है। किन्तु जो मन सदा ही मलीन बना रहता है, विषयों की चाह स्थिर रहती है, कोई भी विवेकयुक्त बात सुनने-मानने के लिए तैयार ही नहीं, सदैव जगत में ही आवारा कुत्ते की तरह भटकता फिरता है, उससे बड़ा कपूत और कौन होगा। जो मन एक बार जगत में भटक जाता है, वह सदा अनर्थ एवं अधर्म की ही बात करता है। जिसके अन्तर में अधर्म होगा, उसके व्यवहार तथा दृष्टिकोण में धर्म, कर्त्तव्य पालन, सदाचार आ भी क्योंकर सकता है। इसके विपरीत जो मन धर्म का पालन करते हुए, प्रभु चरणों में जुड़ जाता है, वही एक देवदूत के समान होता है जो प्रभु का संदेश लाकर, भक्त के अन्तर में हरि-प्रेम तरंगित कर देता है । जिस मन में भ्रान्ति हो, उसे जगत में सर्वत्र भ्रान्ति ही दिखाई देती है । जगत में सत्यता, नित्यता की भ्रान्ति, शरीर में आत्म भाव की भ्रान्ति, संसार में गुणी अवगुणी की भ्रान्ति, दुखों में सुख की भ्रान्ति, अर्थात् भ्रान्त-मन का सारा जीवन भ्रान्ति में ही व्यतीत होता है, भ्रान्ति में ही भ्रमित होता है। कैसी विडम्बना है कि भ्रान्त चित्त को जगत का वास्तविक रूप दिखाई ही नहीं देता। कुछ का कुछ भासित होता है। चैतन्य में जड़त्व का आभास होता रहता है । मिथ्या तथा सदा परिवर्तनशील जगत ही मुख्य हो जाता है। यह कैसी लूट है ?

मन समष्टि चेतना से कट कर, मिथ्या एवं कल्पित व्यष्टि की भावना कर बैठता है। वह अपने आपको भी खण्ड-खण्ड अनुभव करने लगता है तथा जगत में भी नानात्व दिखाई देने लगता है । चैतन्य खण्ड-खण्ड हो ही नहीं सकता, किन्तु विभक्त तथा व्यष्टि मन को खण्ड खण्ड दिखाई देता है। वह देश, कुल, भाषा सभ्यता, धर्म तथा सीमाओं आदि की

कल्पना कर, खण्डित होता चला जाता है। आंख, कानादि में एक ही सत्ता कार्यशील है, किन्तु वह उस एक सत्ता को नहीं जानता-पहचानता, आँख, कानादि इन्द्रियों को एक दूसरे से भिन्न-भिन्न जानता है। कभी उसका लक्ष्य एक विषय पर चला जाता है, तो अगले ही क्षण किसी दूसरे विषय पर यह कल्पित फूट नहीं तो क्या है ?

अब थोड़ा वासना पर भी विचार कर लिया जाये क्योंकि वासना ही मन तथा विकारों की प्रेरक है। जब यह कहा जाता है कि मन ही समस्याओं की जड़ है तो उस का अर्थ वासना ही होता है। वासना सारे जगत को नचा रही है, भ्रमा रही है, जला रही है। वासना दिखाई तो कहीं देती नहीं, किन्तु प्रत्येक मन में उसका वास है । वासना के भी शुभ तथा अशुभ दो स्वरूप होते हैं । अशुभ वासना चित्त की क्लिष्ट-वृत्तियों से प्रेरित होती है तथा जीव को जगत में उलझाए रखने के लिए उत्तरदायी है। यह तम-रज प्रधान होती है । चित्त को सदैव विषयाभिमुखी चंचल बनाए रखती है। अशुभ वासना की पकड़ से निकल पाना बहुत ही कठिन कार्य है त्यागी, निवृत्ति परायण, विरक्त महात्मा भी इससे नहीं छूट पाते। मंच से उपदेश देना तो आसान है किन्तु अन्तर्वासना से छुटकारा पाना बहुत ही कठिन है। किसी में अभिमान है तो किसी में लोकेषणा । यह सब अशुभ वासना के ही विभिन्न स्वरूप हैं। साधकों को वासना अधिक परेशान करती है, उनमें शास्त्र ज्ञान तथा साधना का अभिमान संसारियों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। अशुभ वासना से छुटकारे का उपाय शुभवासना का उदय अर्थात् विवेक के संस्कारों का संचय है। वैसे सतगुणी शुभ-वासना भी, आत्मा पर एक आवरण ही है। उसके हटाए बिना आत्म-स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती । परन्तु जिस प्रकार चुभे हुए कांटे को एक दूसरे कांटे से निकाला जाता है तथा तत्पश्चात् दूसरे कांटो को भी त्याग दिया जाता है, उसी प्रकार शुभ-वासना से अशुभ वासना का नाश करके शुभवासना की निवृत्ति भी आवश्यक है ।

योग-दर्शनानुसार वासना का कभी नाश नहीं होता। वासना चार अवस्थाओं, प्रसुप्त, तनु, विछिन्न तथा उदार अवस्था में चित्त में रहती है। प्रसुप्तावस्था में वासना चित्त में सोई रहती है। उदार अवस्था उसकी जाग्रत होकर, चित्त में प्रभावशील हो जाने की अवस्था है। विछिन्न अवस्था में उदार हुई अवस्था का ज़ोर टूट जाता है तथा कटी हुई फसल की तरह भूमि अर्थात् चित्त में गिर जाती है। तनु अवस्था में वासना, साधन, जप, कीर्तन, सेवा कर्म तथा योगाभ्यास से इतनी पतली अर्थात् कमजोर हो जाती है कि उसकी उदार होने की क्षमता ही समाप्त हो जाती है। वह भूने हुए चने के समान होती है जिसकी आकृति तो चने की ही रहती है, किन्तु वह अंकुरित नहीं हो पाता। यही वासना-क्षय है। वासनाक्षय के बिना न मनोनाश सम्भव है, तथा न ही तत्त्व दर्शन।

किन्तु यह वासना है बड़ी भयानक। पल भर में किसी को देवत्व प्रदान कर आकाश की ऊँचाइयों में पहुंचा दे तथा अगले ही क्षण, जीव के अन्तर में राक्षसत्व जाग्रत कर, उसे पाताल में पटक दे। कब किससे क्या करवा डाले, इसका पता भगवान को भी लगता है कि नहीं, यह भगवान ही जानें।

वासनाएँ ही जगत में, बंध का कारण बनें
वासनाओं का ही तब मन, इक घना जंगल बनें
मन में न जब वासनाएँ, आतमा भी मुक्त है
मुक्त हो जब मन किसी का, मुक्त तब ही वह बनें

बंधन का कारण वासना ही है क्योंकि इसी से युक्त होने पर जीव, जगत के प्रति आसक्त होता है। जगत बंधन का कारण नहीं, जगत के प्रति आसक्ति बंधन का कारण है तथा आसक्ति का कारण वासना ही है। मन में इतनी वासनाएँ इकट्ठी हो जाती हैं कि जीव उन्हीं की भूल-भुलैयों में ही पड़ा रहता है। वासनाओं का ऐसा चक्र घूमने लगता है कि जीव को उसमें से निकलने का मार्ग मिलना कठिन हो जाता है। यह समझ नहीं आता कि

जीव ने वासना को पकड़ रखा है कि वासना ने जीव को। वासना जीव को नहीं छोड़ना चाहती तथा जीव वासना को । इस काल्पनिक गठबंधन में जगत महत्त्वपूर्ण हो गया है । वासना विषयों के आधार पर ही बढ़ती-फूलती है । जगत के विषय उसकी रमण-स्थली है । इसलिए वासना जगत को सहेज कर रखना चाहती है। किन्तु शुभ-वासना जगत से हटने लगती है। आत्मा है तो नित्य मुक्त पर वासना उस मुक्ति का अनुभव नहीं होने देती । शुभवासना, जीव को आत्मा की नित्य-मुक्त अवस्था के अनुभव की ओर अग्रसर करती है । यही शक्ति का प्रति प्रसव क्रम है जिसमें सर्व प्रथम प्रत्याहार की स्थिति आवश्यक है। तभी अन्तर के वास्तविक अनुभव आरम्भ हो पाते हैं । इसीलिए जिसका मन वासना रहित है वह जगत बंधन से मुक्त है तथा वही आत्मा की मुक्त अवस्था के अनुभव की ओर आगे बढ़ता है ।

अब थोड़ी माया की भी झलक देखी जाये। जीव के अन्दर की अविद्या, भ्रान्ति जो कि जीव जगत उससे भिन्न एवं सत्य दर्शाती है, ही माया है। माया का आवरण बाहर जगत में नहीं होकर जीव के चित्त में है। जिनके अन्दर से यह आवरण उतर जाता है, उनके लिए जगत विलीन हो जाता है । जिन के अन्तर में यह आवरण पड़ा रहता है, उनके लिए यह नामरूपात्मक जगत बना रहता है। इसी आवरण को चित्त तथा जड़ की ग्रन्थि कहा जाता है । यह ग्रन्थि कहीं है नहीं, तथा न ही हो सकती है, किन्तु भ्रान्तिवश जीव के अन्तर में इस ग्रन्थि की कल्पना ऐसी परिपक्व है कि उसका खुल पाना असम्भव प्रायः हो गया है। जब तक यह ग्रन्थि का भाव बना रहता है तब तक समष्टि चेतना से भिन्न, व्यष्टि चेतना की कल्पना बनी रहती है, जीवत्व अथवा अस्मिता का रूप भी बना रहता है तथा जगत में माया भी फैली हुई दिखाई देती रहती है। जीव माया में भ्रमित होकर भटकता एवं सुख-दुख भोगता रहता है। इसी माया से छुटकारा पाने के लिए भक्त माया से ही प्रार्थना करता है ।

मैं बालक अंजान बेचारा, बख्श देयो हे माया
मुझ पर करो सवारी तुम न राखो दूर ही छाया

जो तुम लागो, जात बढ़त ही, पल-पल छिन छिन करते
मैं तो अन्तर राम सुखी था, काहे मन भरमाया
तुम हो शक्ति राम प्रभु की, राम ही प्रेरक तेरे
मैं भी राम का दास कहाऊँ, काहे मुझे फसाया

एक बार जब जीव माया के फेर में आ जाता है, तो निकल पाना कठिन हो जाता है। फिर तो प्रतिक्षण यह चक्र बढ़ता ही जाता है। माया किसी को भी नहीं छोड़ती-

माया नारी, नटनी भारी, ठग लेवे जग ही को
जोगी जती कोई न छोड़े, लेत फसाए सबको
हाव-भाव सुन्दर हैं उसके रूप मनोहर धारे
मनवा पाछे लग है जावत, ना कह सकत न उसको
कहीं फसाए ममता माहीं, कहीं विवेक दिखाए
कहीं दिखाए भोग जगत के, तरसत है मन उसको
जो भी बचना चाहे उससे, कसती उसे घनेरा
छूटन देत किसे भी नाहीं, ज्ञानी ध्यानी सबको

माया से पार पाने के लिए अहंकार को पहले समाप्त करना आवश्यक है—

सीस कटावे जो मन अपना, भव से उतरे पार वही
मन ममता तृष्णा जा मन नाहीं, जात है बंधन छूट वही
मन करे त्याग का गर्व कोई मन, ज्ञानी बनत कोई सिर ऊंचा
अहं भक्त का कोई राखे, जात जगत में डूब वही मन
जोगी भोगी कोई बनता, जगत तियागे, जगत विराजे
मन ही खेल प्रभु विस्तारा, जगहिं देवत थूक यही मन

माया का कैसा विस्तार है, सब कुछ त्याग दो, तो त्याग का अभिमान हो जाता है। शास्त्र ज्ञान संचय कर लो, तो उसके गर्व से सिर

ऊंचा हो जाता है । यदि भक्ति भाव जप-कीर्तन इत्यादि करो तो उसका अभिमान बैठने नहीं देता। फिर संसारी जीवों की तो बात ही क्या है ? वह तो आकण्ठ माया तथा अहंकार में डूबे हुए हैं। सुखीपरिवार, धन-सम्पत्ति, रूप-यौवन, क्या क्या अभिमान उनके पीछे लगा है, फिर वे भला माया से छूट भी कैसे सकते हैं । अहंकार समाप्त हुए बिना, माया से छुटकारा कैसा ?

यूं तो इस पुस्तक संग्रह में अनेकों भाव संकलित है जैसे राम भक्ति, कृष्ण प्रेम, मीराबाई के प्रति श्रद्धागान, कई प्रकार के प्रबोधन तथा पश्चाताप् किन्तु यहां केवल इन सभी भावों के सैद्धान्तिक आधार की ही अति संक्षिप्त चर्चा की गई है। भूमिका को समाप्त करने से पूर्व मैं एक अन्य विषय पर थोड़ी चर्चा करना आवश्यक समझता हूं, और वह है गुरुतत्त्व जो कि हमारे भजनों-गज़लों की पृष्ठभूमि में सर्वत्र विद्यमान है तथा जिसके बिना अध्यात्म की चर्चा पूर्ण ही नहीं होती। वैसे सिद्धान्त रूप से यह स्वीकार किया गया है कि अध्यात्म- लाभ गुरु के बिना भी सम्भव है, क्योंकि वास्तविक गुरु तो प्रभु ही हैं। यह बात ठीक होते हुए भी गुरु शरीर आवश्यक माना जाता है, क्योंकि गुरुतत्त्व के कार्य करने का माध्यम वही होता है ।

गुरु शरीर तथा गुरुतत्त्व में अन्तर है। गुरु तत्त्व यदि गुरु है तो शरीर माध्यम, जो कि अनित्य एवं मिथ्या है। शरीर को भूख भी लगती है, नींद भी आती है, अस्वस्थ भी होता है तथा उसे क्रोधादि विकार भी परेशान करते हैं। वह शिष्य को नित्य शाश्वत सुख प्रदान करने में असमर्थ है । जबकि गुरुतत्त्व नित्य एवं शाश्वत है। वह प्रत्येक प्राणी, मनुष्य, पशु, पक्षी में विद्यमान है। यहाँ तक कि वह कण-कण में व्याप्त है। वही समष्टि एवं व्यष्टि चेतना है। वही जीवन दायिनी शक्ति है तथा जीव की मृत्यु के पश्चात् भी उसका नाश नहीं होता । गुरु तत्त्व के दो प्रवाह हैं, एक बहिर्मुखी (जगदामिभुखी) जिसे उसका प्रसव क्रम कहा जाता है। दूसरा अन्तर्मुखी

(आत्माभिमुखी) जिसे उसका प्रति प्रसव क्रम कहा जाता है। सामान्यतया उसके प्रति प्रसव क्रम को ही गुरुतत्त्व कहा जाता है, क्योंकि वही जीव का आध्यात्मिक कल्याण करता है। वही संस्कारों को क्षीण करने का कार्य करता है। प्रसव क्रम में तो संस्कार-संचय होता है। इसे प्रसुप्त गुरु तत्त्व एवं जाग्रत गुरुतत्त्व भी कहा जा सकता है।

योग दर्शन कहता है- "वीत रागं विषयं वा चित्तम्" अर्थात् जो चित्त विषय-कामना रहित हो गया हो तथा उसके स्थान पर गुरुतत्त्व प्रत्यक्ष प्रकाशित हो उठा हो, ऐसे चित्त का सहारा (अवलम्बन) लेने से वृत्ति निरोध हो जाता है। यहीं पर आकर गुरु की आवश्यकता प्रतीत होती है। गुरु ही ऐसा व्यक्तित्व है जो यदि चित्त में कुछ विकार हों भी, तो उन्हें पीछे धकेल कर, गुरु तत्त्व को प्रकाशित कर, शिष्य को उसका अवलम्बन प्रदान कर सकता है। इस प्रकार चित्त-शक्ति के अवलम्बन-प्रदान प्रक्रिया को ही शक्तिपात कहा जाता है। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित पद में स्पष्ट किया गया है-

अन्तर गगन गुरु परकाशित
माथे मेरे हाथ जो राखा, हुआ त्रिलोक प्रकाशित
धन्य हुआ गुरु किरपा कीनी, अगम अपार मिलाया
मन भ्रम तन सगला छितराया, अन्तर हुआ प्रकाशित
गुरु दयाला किरपा कीनी, लियो लगाए कण्ठा
हुआ अंधारा दूर सभी ही, देखत जहां प्रकाशित
तीर्थ शिवोम् जहाज पह अपने लिए बैठाए मोहे
छूटत पाछे तम विस्तारा, जावत होत प्रकाशित

जब गुरु एवं शिष्य दोनों चिदाकाश (गगन) अर्थात् वासना-रहित चित्त की शुद्ध अवस्था में स्थित होते हैं तभी शिष्य को गुरु शक्ति का सहारा प्राप्त होता है। तभी शक्तिपात् दीक्षा सम्पन्न होती है। माथे पर हाथ रखना, अथवा कोई मन्त्रादि का उपदेश करना, या करुणामय मंगलमय दृष्टि से

शिष्य को देखना आदि तो, केवल माध्यम है, वास्तव में गुरु के शुद्ध चित्त के अन्दर का शिष्य के प्रति मंगल-भाव ही, चित्त-शक्ति का अवलम्बन प्रदान करता है। गुरु कृपा का ही यही तो फल है कि अगम तथा अपरम्पार मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। मन के अन्तर का सभी तम, प्रभु तथा तन के अन्दर से सभी देहाध्यास निकाल बाहर किया, गुरु शक्ति ने अन्तर में कल्याणमय कार्य जो आरम्भ कर दिया। युगों-युगों तथा जन्म-जन्मान्तर की संचित मलीनता दूर होने लगी। फिर भला चित्त में तमाधंकार कैसे ठहर सकता है ? सारे जगत में जड़ता समाप्त हो गई तथा चैतन्य प्रकाशित हो उठा। यही गुरुदेव की वास्तविक दयालुता है । वह शिष्य के जड़ चित्त को अपने चेतनता-रूपी जहाज में बिठा लेते हैं जिससे नाम रूप का सारा विस्तार पीछे छूटता जाता है तथा चेतन्य रूपी प्रकाश फैलता जाता है ।

सद्गुरु कृपा अमोलक कीनी, अपने धाम दियो मोहे वासा
जहां गए से लौटत नाहीं, आसा जगत की नहीं निरासा
धाम में वासा करने कारण, ध्यानी ध्यान लगावें नित ही
गुरु-कृपा बिन मिलत है नाहीं, विरथा करत है आसा
वेद उचारें, करें जांप-जप, माथा रगड़े द्वारे
वासा धाम कठिन है मिलना, होवत जतन निरासा

गुरु महाराज की कैसी अनोखी कृपा है जो अपने नित्य, आनन्दमय तथा चित्तस्वरूप धाम (स्तर) पर मुझे स्थापित कर दिया है। एक बार यदि जीव का जीवत्व समाप्त होकर, गुरु-धाम में वास हो जाए, तो जीव आवागमन के चक्र से सदैव के लिए छूट जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही कोई ध्यान का अभ्यास करता है तो कोई प्राणायाम का । कोई मन्दिरों में घण्टियां बजाता फिरता है तो कोई तीर्थों के कष्ट सहन करता है । किन्तु यह अवस्था गुरुकृपा के बिना प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि चित्त की मलीनता तो गुरु शक्ति ही दूर कर सकती है ।

गुरुदेव ठाकुर तुम मोरे, मैं सेवक हूँ तोरा

जो कुछ मैं हूं दीया तुमने, मैं सेवक हूं तोरा
कोई मारे, मोहे सतावे, विनय करूं तो ही सों
तुम को छोड़ कहां मैं जाऊं, मैं सेवक हूं तोरा
जागत सोवत, कर्म कमावत, छिन छिन पल-पल सिमरूं
दूजी ठौर नहीं मन जाए, मैं सेवक हूं तोरा
सोऽहम नाद किया अन्तर में, जाग्रत किरपा तोरी
लीन रहूं, तल्लीन रहूं, मैं, मैं सेवक हूं तोरा

इस भजन में गुरु के प्रति शिष्य के भाव का वर्णन किया गया है। गुरु, शिष्य का मार्ग-दर्शक भी है तथा उपास्य भी । शिष्य साधन को भी गुरु की सेवा समझता है, तथा सेवा को भी सेवा। शिष्य न साधन करता है न कर्म, वह तो केवल सेवा करता है। उसके पास जो कुछ भी, लौकिक अथवा पारलौकिक होता है सभी कुछ गुरु का दिया हुआ मानता है, गुरु का ही मानता है तथा गुरु की सेवा में ही उसका सदुपयोग करना कर्त्तव्य समझता है । उसका जो कुछ है गुरु ही है । जब जगत में उसके समक्ष कठिनाइयां आती हैं, सेवा करते हुए भी लोग उसे अपमानित करते हैं । सब का आदर करते हुए उसे अनादर भोगना पड़ता है तो वह कहां जाकर रोए, वह तो केवल गुरु-शक्ति के समक्ष ही प्रार्थना कर सकता है। अपना तथा अपनी शक्ति का अहंकार उसमें होता नहीं, वह तो केवल गुरु-महाराज का ही सेवक होता है । जागते, सोते, व्यवहार करते, उसका अन्तर्मन गुरु का ही ध्यान-स्मरण करता रहता है। एक पल के लिए भी यदि कभी विस्मृत हो जाए तो वह व्याकुल हो उठता है । वह व्यवहार भी गुरु का ही समझकर सेवा भाव से करता है। फिर अन्य कहीं मन जाने का, प्रश्न ही कहां उठता है। गुरु कृपा से ही उसके अन्तर में सोऽहम नाद (अर्थात् जो गुरु शक्ति है, वही मैं हूं) जाग उठता है । सोऽहम् कोई, केवल जप का विषय नहीं, अनुभूति का विषय है जो अन्तर्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है। शिष्य उसी

नाद में लीन होता चला जाता है तथा उन्मनी अवस्था को प्राप्त होता है किन्तु इसके लिए धैर्य पूर्वक, सेवाभाव पूर्वक समर्पण की आवश्यकता होती है। साधकों में प्रायः धैर्य का अभाव होता है। वह त्यागना कुछ नहीं चाहते किन्तु सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं। यह प्रेम तथा सेवा की नगरी है जिस में अहंकार रूपी सिर को कटवा कर ही प्रवेश पाया जा सकता है।

अब अगले भजन में गुरु शक्ति की अन्तर्क्रिया का वर्णन किया गया है। यह स्थिति उसी साधक को प्राप्त होती है, जो गुरु का ही होकर रह जाता है।

गुरु ने ऐसी कृपा करी है, शब्द का हुआ धमाका
फूटा गगना देखत देखत, बिजली बिना कड़ाका
शत्रु दल जो बैठा अन्दर, दहक उठा शंका में
अब तो भागन बेला आई, फहरा उठी पताका
मार काट ऐसी मन अन्दर, शक्ति-गुरु मचाई
तम रज भागा, पांव सिर पर, ऐसा गुरु लड़ाका
कौतुक ऐसा गुरुवर कीना, दशा है बदली मन की
देख-देख कर अचरज होता, करता जगत श्लाघा

गुरु ने ऐसी कृपा की है कि अन्तर अनाहत नाद फूट निकला है। अनायास ही कई प्रकार के शब्द अन्तर में प्रकट होने लग गए हैं जिसमें तन्मय होता जाता है। हृदय के अन्दर का चिदाकाश आवरणरहित होता जा रहा है तथा चैतन्य अधिकाधिक प्रकट होता जा रहा है। भाँति-भाँति का ज्योति दर्शन तथा तरह-तरह के रंग-बिरंगे प्रकाश चित्त में दिखायी देने लगे हैं। अन्तर में योगाग्नि प्रज्वलित हो उठी है जिसमें विरोधी तथा अशुद्ध संस्कार जलने लगे हैं। उनमें एक भगदड़ सी मच गई है। जलने की शंका से चित्त को छोड़-छोड़कर, सब बाहर भागने लगे हैं। गुरु-तत्त्व ने अन्तर में ऐसी मार-काट मचाई है कि उसमें शव ही शव दिखाई देते हैं। तमोगुण तथा रजोगुण तो सिर पर पांव रखकर, चित्त से भाग खड़ा हुआ है। गुरुदेव ने

ऐसा खेल दिखाया है कि चित्त स्थिति ही बदल गई है। जहां पहले चित्त मलीन था अब निर्मल होता जा रहा है। साधक को, अपने चित्त की बदली हुई स्थिति देखकर, स्वयं आश्चर्य होता है ।

अन्त में पंजाबी का एक भजन देकर, इस विषय को समाप्त करते हैं-

कुछ पाया कुछ अजे वी नाही, सतगुरु राह वखाया
रोंदयां मैनूं देय दिलासा, राह प्रीतम ते लाया
राह ते दिसन लग्गा मैनूं, पर मैं ठोकर खावां
सतगुरु इक सहारा मैनूं, जग का रूप वखाया
जग तों ते दिल हरदा जावे, बल्ल प्रीतम दे वददा
उठदया बैंडया संभल संभल के, प्रीतम राह चलाया
यार मिलन दी आसा जागी, छडड मान मर्यादा
केहड़ा वेला प्रीतम दिस्से, तड़पे दिल घबराया
तीर्थ शिवोम् पिआरा तक्कां, उठ उठ झाती पावां
दिल बिच इक्को आस है लग्गी, प्रीतम इक समाया

केवल गुरु दीक्षा ले लेना ही पर्याप्त नहीं। यह केवल वास्तविक आन्तरिक साधन का आरम्भ मात्र है जिसमें आन्तरिक शक्ति का गुरु प्रसाद तो प्राप्त हो जाता है किन्तु साधक की आध्यात्मिक यात्रा, अभी सारी की सारी शेष रहती है। पद्य में कहा गया है कि मैं ने कुछ पा लिया है तथा कुछ पाना बाकी है। सद्गुरु ने मुझे रास्ता दिखा दिया है। अब चलना मेरा काम है। मैं जगत में भान्ति भान्ति के दुख भोग रहा था, रो रहा था, तड़प रहा था, गुरुदेव ने न केवल मुझे दिलासा ही दिया अपितु प्रियतम के घर की ओर जाने वाला मार्ग भी बतला दिया ।

रास्ता मुझे दिखाई देने लग गया है किन्तु अभी बार-बार ठोकर खा कर मेरे गिर जाने का भय बना ही है। जब जगत के विषयों को देखता हूं, अथवा पूर्वकृत प्रारब्धानुसार अनुकूलताएं-प्रतिकूलताएँ मेरे सामने आती हैं, लुभावने तथा सुहावने दृश्य दिखाई देते हैं तो मन प्रभावित होकर,

पुनः जगत की ओर खिंच जाता है। ऐसी अवस्था में, मुझे एक मात्र गुरुदेव का ही सहारा है । केवल, माया के प्रवाह से, वही नैया खे सकते हैं, पार लगा सकते हैं। उन्होंने कृपा करके मुझे, जगत की असारता, अनित्यता, असत्यता का रूप तो दिखला ही दिया है।

अब मेरा मन जगत से हटता जा रहा है । जगत में बार-बार दुखों को जो देखा - भोगा है। यह संसार केवल देखने भर को ही सुन्दर एवं आकर्षक है अन्यथा इससे अधिक दुख-दायी तथा कुरुप दूसरा कुछ नहीं । अब तो साजन प्रभु की ओर मन बढ़ता जा रहा है । उठते-गिरते-फिसलते, संभलते, मैं प्रियतम की ओर ही आगे बढ़ा जा रहा हूँ । गुरुदेव की कृपा शक्ति तथा आशीर्वाद ने ही मुझे प्रभु की ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा तथा सामर्थ्य प्रदान की है।

अब तो प्रभु - प्रियतम से मिलने की आशा जाग उठी है। प्रेम तथा प्रभु-वियोग की ज्योति अन्तर में सदैव प्रज्वलित रहती है । जगत के कोई भी विषय भोग, आकर्षण या दृश्य मुझे अपनी ओर नहीं खेंच पाते। किसी प्रकार के मान-अपमान अथवा सम्मान का भी कोई भाव नहीं रह गया है, न ही कुल, सभ्यता, भाषा अथवा धर्म का बंधन ही बाकी है । अब मन में मात्र एक ही भाव रह गया है कि कौनसा ऐसा समय हो, जब मुझे अपने प्रिय प्रभु के दर्शन प्राप्त हों। मन में प्रति पल एक तड़प उठती रहती है। वियोग तथा विरह की अग्नि जलती रहती है जिसमें सारा अहंकार तथा पृथक व्यक्तित्व का भाव जल कर राख हो गया है। जैसे-जैसे प्रभु मिलन में देर होती जाती है, मन में एक घबराहट सी उठती है । उठ-उठ कर, झांक-झांक कर, राह देखते रहने के अतिरिक्त दूसरा कार्य नहीं । मन में एक प्रभु की आशा है। मन में एक प्रभु ही समाया है। गुरु कृपा से ही, एक दिन यह आशा पूरी होगी ।

गुरु- कृपा तब जानिए, जब शोक-मोह मिट जाए

सभी जगह दीखे प्रभु प्यारा, दुविधा सब कट जाए
अपरम्पार गुरु वा मेरा, अनुपम किरपा कीनी
लेत मिलाय दीनन को वह आपा मन से जाय
केते खोजत फिरे गुरु को, गुरु न मिलया कोई
अन्तर में जो राम मिलाए, गुरु कहावे सोई
गुरु बनन को सब ही तरसे, गुरु गर्व न होई
गुरु सवारे सब दीनन को, ता का मल हट जाए

भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति, कोई प्राप्ति ही नहीं। यदि अन्तर गुरुशक्ति की जाग्रति होकर, साधन में आनन्दानुभव हो, तो जब तक चित्त-स्थिति में अन्तर नहीं आया तब तक गुरु कृपा का फल प्राप्त हुआ मत समझो। जब तक विषयों की ओर से आकर्षण समाप्त नहीं हुआ, मन में निर्भयता नहीं आई, ईश्वर के प्रति समर्पण - भाव जाग्रत नहीं हुआ, तब तक काहे की चित्त-स्थिति। इसीलिए यहां कहा गया कि जब तक शोक मोह नहीं मिट जाय, गुरु कृपा मत समझो। शोक तथा मोह, जगदासक्ति के कारण ही होता है। किसी वस्तु के वियोग हो जाने का भय, या किसी वस्तु के वियोग हो जाने पर शोक, यह सब आसक्ति के ही रूप हैं। ईश्वर के प्रति समर्पण के भाव के विकसित होने में भी, आसक्ति ही आड़े आती है। गुरु की कृपा तभी फलीभूत समझनी चाहिए जब आसक्ति से पूरी तरह निवृत्ति प्राप्त हो जाए, अन्तःकरण शुद्ध हो जाय तथा अन्तर तथा बाह्य सर्वत्र प्रभु ही विद्यमान अनुभव हो, सब प्रकार का द्वैत मिट जाय।

मेरा गुरु भी अपरम्पार है तथा उसकी कृपा भी अपरम्पार है तथा कृपा का फल भी अपरम्पार है। उसने मुझ पर अनूठी कृपा की है। जिसका आर-पार कुछ भी समझ में, पकड़ में नहीं आता था, उसके प्रत्यक्ष दर्शन करा दिए। दीनन पर तो उसकी विशेष कृपा है। उनकी व्यष्टि चेतना समाप्त कर अपने में मिला लेता है। जीव का अहंकार ही तो उसकी व्यष्टि चेतना का कारण है। गुरुदेव उस कारण को ही समाप्त कर देते हैं। जगत में असंख्य

जीव गुरु को खोजते, भटकते फिरते हैं किन्तु उन्हें गुरु लाभ नहीं होता। जो गुरु अन्तर में ही राम के दर्शन करा देता है, वही गुरु कहलाने योग्य है अन्यथा गुरु तो अनेकों बने फिरते हैं। गुरु बनने में ऐसा आकर्षण है कि सबका मन गुरु बनने का होता है किन्तु पूर्ण एवं सच्चा गुरु वही है जिसमें गुरु होने का अहंकार तिल मात्र भी नहीं होता। गुरु तो निरहंकार रह कर सभी दीन जनों को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर कर देता है। उनके अन्तर की सभी मलीनता शुद्ध होकर, प्रभु प्रेम प्रकट हो जाता है। जगत का सभी आकर्षण समाप्त हो जाता है। ऐसे गुरु प्रभु कृपा से ही प्राप्त होते हैं।

इस समय जब कि माया तथा वासना का चारों दिशाओं में खुला ताण्डव हो रहा है, अधर्म एवं अनीति का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित है, सारा जगत ही स्वार्थ तथा अहंकार के इशारे पर नाच रहा है, काव्य-संगीत तथा नृत्य जो कभी आध्यात्मिक साधना के अंग थे, मनोरंजन का साधन तथा आधार बनकर रह गए हैं, ऐसे समय में सत्साहित्य की सबसे अधिक आवश्यकता है। हम जानते हैं कि युग के प्रवाह को रोक- मोड़ पाना बहुत कठिन है, फिर भी इस दिशा में जितना प्रयत्न हो, उतना ही अच्छा है।

इस भजन संग्रह में, राग ताल बिठाने में ब्रह्मचारी पंकज प्रकाश का योगदान सराहनीय है। वैसे तो यह पद्य गेय है, किन्तु हमने इनको केवल संगीत-प्रेमियों के लिए ही नहीं लिखा है। मुख्यतः तो यह भक्तों के लिए हैं। यदि किसी को गायन का अभ्यास न भी हो तो भी, जैसा भी बने, भक्त इन्हें अपनी मस्ती तथा भाव में गाकर इनका आनन्द उठा सकता है।

हम आशा करते हैं कि सहृदय प्रेमी भक्त तथा संगीतज्ञ इनका भरपूर लाभ उठा कर, हमारे प्रयत्न को सार्थक करेंगे। श्री गुरु महाराज सबका कल्याण करें-

-शिवोम् तीर्थ

अनुक्रम

आनन्द

रचना	रचना क्रमांक
प्रभु जी ! प्रेम की वर्षा	६
मतवारी, मतवारी, भई हूं	२१
मेरा मन प्रभु चरनन ही	२९
भागता फिरता जगत में	४७
भय भागा पाओं सिर रखकर	६५
मन की मौज आनन्द मनाओ	७५
प्रेम के जल में मनुआ भीगा	७७
खिला गगन में पुष्प	८३
नाद श्रवण अन्तर प्रकट	८५
जब भया मन मगन अन्दर	१२४
आदि अन्त मध्या आनन्दा	१३६
छोड़ के मिथ्या जग यह	१४०
चालो चालो चालो सखि	१४१
प्रेम का नशा जा जन को चढ़या	१४७
मोर तोर में लया पछाना	१४८
आज हुआ मतवारा मेरा मन	१४९
यमुना के तीर मुरलिया बाजे	१७५
रंग चढ़ा है मो पर ऐसा	१७८

समर्पण

अंध कूप में जीव पड़ा है	१
माथे बोझ उठा न पाऊं	८
पहने कपड़े पाप के	११
वासना रूप अनेक धरे	१५
राम तुम पर ही टीका है	२४

पश्चाताप

मोड़ अन्तिम वेल का २
मन की आश रही मन माहीं ७६

मन

मन दरवाजा चोर घुसन का ३
राखि लेय भक्तन को अपने १३
मन को चाहे कितन घेरो ५७
जग को तो उपदेश करे पर ६०
कभी मर यह जाए ६२
जा मन आपा ऊभरे ७२
मान की तान नहीं मैं त्यागत ७८
घेरन का जो करत हं ९८
जो मनवा बन जाए निर्मल ९९
अन्दर मैल कुचैल है तेरे १००
साई मोहे सिमरा राम न जाए १०८
जो मन भजन राम है नहीं १२२
मन बैठे जब मनहिं माहीं १३२
मनवा क्यों न जपे हरि नाम १३३
चित्त का फैलाव दुनिया २०६

शुद्ध मन

जा मन हो आतम ८१
हरि सिमरन जा मनहिं उभरे ८२
सीस कटावे जो मन अपना ३३

विरह

उड़ चलो मन उड़ चलो ५
आओ आओ साजन प्यारे ३८
सावन मेघा बरस रहा है ४२

घायल हिरदय विरह मोरा ५१
ज्यों ज्यों विरहा अधिक मन ५२
एक ही पीव हरि जी मोरा ६१
बिरहिन रहती जोवत ६३
चैन न पावे छिन जी जियड़ा ९५
पीड़ा लागी जा मन माहीं ९७
सेज बिछाए राह निहारत १२३
छोड़ गए पीरा हिरदय में १३९
कब से खोज रही पी अपना १४३
निकलत जाए, निकलत जाए जाए १४६
बीती रही उमरिया १५५
प्रेम का खेल निराला देखा २१०
प्रेमी तुमरे द्वारे आई २११

नाम

हरि सिमरन हरि गुण प्रगटाए ९
नाम तेरा जग में बरसे ४४
रसना बिना हिलाए मनवा १३५
नाम का भेद कोई ही जानत १३८
नाम का भेद कोई ही जानत १६०
मन बना था वन १८४
तुमरी किरपा बिन हे प्रभुजी २१५
सद्गुरु मेरे नाम प्रेम प्रगटाया २१६

उद् बोधन

जन्म होता जब यहाँ संसार में ४
जग में कोई किसी का नाहीं ४८
मैं को मारूं, मैं मरूं जो ४९
तेरे मन दोष बसा है ५६
फिर यह अवसर मिलेगा ५८
राम राम क्या शोर मचावे ६४

दीन-हीन जन दुखी बिराजे ६६
मन्द-बुद्धि हरि नाम न लेवे ६९
सार-मति यह ही मेरे भाई ७०
न कोई से वैर करो तुम ७९
जो तू भजन करे नहीं वन्दे ८०
सीम- असीम को लांघकर ८८
काहे रोए, कलपे भागे ९०
कामी क्रोधी, लोभी, मोही ९१
अगन विषय की बुझ न पावे ९२
उठा उठा धुगट री सजनी ९४
बोलने का ढब हो आता १०१
कोई वचन करते हैं मीठे १०२
भक्त लिए धन धूली जैसा १०३
मरना मीठा उस को लागे १०४
दीखत जग उस में ही उलझे १०५
साचा एको है प्रभु मोरा १०६
बन बन काहे भटकत भाई १२०
नशा चढ़ा मदिरा का ऐसा १२६
गहरे उतरो अन्दर १२७
जो प्रभु का हो के रहता १२८
जब लौ फेरत नयना अपने १२९
मेरा तेरा करे तू काहे १३१
भजन कर लो, भजन कर लो १४४
लोग कहे पी दूर बसत है १५०
प्राणी जप ले तू हरि नाम १५२
लड़न झगड़ना जग को दे दे १५४
देर थोड़ी की बात है १५८
मुक्ति लाभ न चाहे कोई १५९
माथे पर तो तिलक सजा है १६३
छीजत जाए, छीजत जाए १६५
देखो देखो वेला आई १६६
मनवा क्योंत फिरत गवार तू १६७

खिला वसन्त है अन्दर तेरे १६९
मुझको को तो जाना था आगे १७३
चाहे जीव जगत में कितना १७७
देखो कैसी बात जगत में १७९
मन में तो अंधेरा छाया १८३
कोई बतावे दूर पिया है ११०
जिस को न कुछ जग में करना २०३
जाग उठो-अब जाग उठो २०७

प्रेम

जहां मची हो लूट प्रेम की ७
कसक प्रेम की हिरदय माहीं ४१
प्रेम कर तू उस प्रभु से ४३
धन को देय, प्रेम को ले लो ४५
जब लगन लगी श्री राम से ५०
जग को छोड़ राम के दासा ५४
मन से सेवा, तन से सेवा ६७
प्रेम का पाना, प्रेम का करना ६८
फल कारण तू करे है सेवा ७३
राम ही केवल प्राण पियारा ९३
प्रेम प्रवाह बहाओ १११
परदेसी मन आय गयो है ११४
होरी! कोई ऐसा प्रेमी होवे ११५
प्रेम नगर में वास करो रे १६१

गुरुदेव

मेरे मन वियोग की पीरा १०
दीन दयाला सद्गुरु मोरा १४
धाँरू हिरदय करूं वन्दना १७
अगम का वासी सद्गुरु २७

सद्गुरु कृपा अमोलक ३०
डाली ताली खुल गया ताला ३४
अनदेखा देखा किरपा से ३५
गुरु कृपा तब जानिए ३७
प्रेम का दाता, प्रेम का रक्षक ३९
गुरु मिल्या मन शीतल होया ४०
गुरु ने ऐसी कृपा करी हैं ५५
अन्तर गगन गुरु परकाशित ७४
आ जाए साजन घर मेरे १३०
गुरुदेव ठाकुर तुम मोरे १५६
गुरुमिलन का मारग टेढ़ा २०९

विनय,वंदना

जीव सदा ही मांगत रहता २०
बार बार मैं जग में आया २२
चूक का दण्ड बहुत मैं भोगा २३
प्रभो ! लीला तुम्हारी २६
किसे जगत में अच्छा २८
दीन असहाय बना मैं ३६
वेल कब होगी प्रभु ७१
साहिब साईं ! मैं नीचन से नीच १०९
बूड़त जाए, डूबत जाए ११२
साहिब साईं, अजब है लीला ११३
साईं मो को एक सहारा तुमरा ११७
हमरी ओर नहीं क्यों देखत ११८
साईं, सबन गुनन की खान १२१
सुनो गरिब नवाज़ अर्ज़ यह १२५
साजन देयो बताए मोहे १५१
हे प्रभु बदनीयती से १५३
साजन तेरे कारन मैंने १६२
ग़रिब नवाज हे साजन मोरे १६४
मैं खिला बगिया में तेरी १७०

मैं झिझकता डर रहा १७१
मैं छोटा मेरा घर भी छोटा १७२
होता रहे गायन तेरा १७४
मैं मनाऊं तुम को प्रीतम १८०
मैं भिखारी दर तेरे का ९६

ग़ज़ल

तू करे कोशिश हज़ारों १७६
हम - पियाला हम - निबाला १८५
सहन ही करता रहा १८६
तेरी दुनिया में जो आया १८७
पा लिया मैं पा लिया १८८
आलिमे मसरूफियत में १८९
उलझनों नाकामियों में १९०
मैं मौत से डरता रहा १९१
सिर मेरे होते हज़ारों १९२
जग मिलावा क्षणिक है १९३
कोई सच्चा हो जो आशिक १९४
इश्क ही है दर्द मेरा १९५
ज़िन्दगी के चार दिन १९६
हक के मस्तानें हैं हम तो १९७
दर बदर भटका किए हम १९८
जब मिला दिलदार अन्दर १९९
जानने जिस एक को ही २०५
दुनिया के इम्तेहान में २०४
इश्क ! तुम ने क्या किया २१२
कि दिल चाहता नहीं २१३
दिल के दुख वह पूछते २१४

मीरा गीत

दर्शन तुमरे तुम से मांगूं १८

करो कृपा हे मीरा रानी १५७
थिरकत थिरकत नाचत मीरा २०२

विविध

कार वही है कार वही १२
अपनो भूलो होय न होय १६
सोचत सोचत जीवन बीता १९
मन में सोच विचार २५
यह जीव प्रलाप करत दुख पावे ३१
जा मन घोर अंधेरा छाया ३२
सारा जीवन भटकत ४६
राम-स्नेही राम को ५३
तज अभिमान करे जो ५९
सरदी लागे, गरमी लागे ८६
उच्च शिखिर पर जो चढ़े ८७
पाप पुण्य दोनों बंधन है १०७
पिया सेज का दर्शन पाया ११६
माया नारी, नटनी भारी ११९
बढ़ चलो, मन चढ़ चलो, १३४
है रक्षा बंधन बांधू तुमको १३७
मैं बालक अंजान बेचारा १४२
काम क्रोध मन बस कर लीना १४५
डाल एक पर पक्षी बैठा १६८
कुझ पाया, कुझ अजे वी नाहीं १८१
सावन मेघा रिमझिम आया १८२
ठुनक ठुनक इक तारा बोले २००
बाजे बाजे मन में बाजे २०१
वासनाएं ही जगत में २०८
ज्ञानी की पहचान यही है ८४
जल में पैदा होत भंवर है ८९

(१)समर्पण

राग - वसन्त ताल - केहरवा

अंध कूप में जीव पड़ा है, निकलत वा से जात नहीं।
रहा बुलाए, आए कोई, पर कोई तो आत नहीं॥
थाका जतन करत वह हारा, धीरज ताकत सब टूटे।
पर न मिला उपाय कोई, करन को कोई बात नहीं॥
यह जग बनया कूप समाना, यों तो लोग अनेकों हैं।
पर डूबे सारे ही तम में, कोई अपना तात नहीं॥
राम निकाले, राम बनाए, राम सहारा दे आए।
दूजा कोई और सहारा, बंधु भगिनी मात नहीं॥
तीर्थ शिवोम् सुनो मन मूरख, छोड़ जतन सब अपना तू।
राम शरण ही, राम चरण ही, दूजा कोई हाथ नहीं॥

(२) पश्चाताप

राग- भैरवी ताल- रूपक

मोड़ अन्तिम वेल का भी, है निकलता जा रहा।
जो चढ़ा सूरज गगन में, वह है ढलता जा रहा।।
है समय के साथ ही, अन्तिम समय अब आ रहा।
कुछ तो बीता जा चुका, बाकी है बीता जा रहा।
ज़िन्दगी चलती रही, अपनी डगर पर राह पर।
जो मिला पहचान का भी, वह गुज़रता जा रहा।।
दुश्वारियां नाकामियां ही, बस रहा मैं झेलता।
पीर सहता, तड़पड़ाता, मैं हूं जलता जा रहा॥
तीर्थ ऐ शिवओम् तू न कर, गिला शिकवा कोई।
कट गई, कुछ कट रही, जीवन यह ढलता जा रहा॥

(३) मन

राग - कामोद ताल - केहरवा

मन दरवाज़ा चोर घुसन का, यहीं से घुसत विकार हैं भाई।
कर कर बन्द रखो दरवाज़ा, चोर विकार घुसन न पाई॥
रह सचेत हो जाग्रत हरदम, मन पहिंरा देते रहियो।
अवसर मिले तो चोर न चूके, जात है अन्दर घुसत वह भाई॥
ताला कुंजी सांभ के राखो, चोर उड़ा न लेने पाए।
नहीं तो वृथा जात सब पहरा, करत विकार काम है जाई॥
तीर्थ शिवोम् हे साधक मनवा, करो मति विश्वासा मन पर।
साथ मिला यह चोरन से है, जकड़ के राखो इसको भाई॥

(४) उद्बोधन

राग - विहाग ताल - त्रिताल

जन्म होता जब यहां संसार में।
मौत का भी जन्म होता साथ में॥
मौत खाती जाय हर पल जीव को।
और जो कुछ भी हो अपने साथ में॥
है कुलांचे मारता संसार में।
पर न देखे मौत अपने साथ में॥
मौत का ताण्डव ही चारों ओर है।
हो अकेला या हो कोई साथ में॥
तीर्थ ऐ-शिवओम् मैं भी देखता।
मौत आए कब चले ले साथ में॥

(५) विरह

राग -सुहा ताल - दीपचन्दी

उड़ चलो मन उड़ चलो, तुम संग बादर उड़ चलो।
छोड़ कर माया की नगरी, घर पिया के उड़ चलो ॥
ठहर बादर सुन तू मेरी, तू रहे आकाश में।
जग तुझे तो छू न सकता, मैं भी चाहूं उड़ चलो ॥
मैं धरा ऊपर जो उठूं, वायु इठलाती मिले।
बनूं उन्मुक्त ऐसी, बरेरुकावट उड़ चलो ॥
पास जो कुछ भी है मेरे, छोड़ दूंगी सब यहीं।
मैं अकेली, इक अकेली, मुझ को ले संग उड़ चलो ॥
तीर्थ ऐ शिवओम् बादर, मुझ को न छोड़ो यहां।
मन तड़पता साथ चलने, बैठ वायु उड़ चलो ॥

(६) आनन्द

राग - पटदीप ताल - केहरवा

प्रभुजी ! प्रेम की वर्षा कीनी।
अन्तर बाहर भीग उठी मैं, परमानन्दित कीनी ॥
बरसत वर्षा हर छिन हर पल, भीगत रहूं निरन्तर।
नयनन राही, हिरदय माही, शीतलता भर दीनी ॥
असमय समय हो कुछ भी कैसा, तुम तो देखत नाहीं।
रहत भिगोए जल शीतल सों, यह किरपा क्या कीनी ॥
तीर्थ शिवोम् लला बनवारी, तुमरो प्रेम नियारो।
गुण अवगुण न देखत जन को, करि किरपा करि दीनी ॥

(७) प्रेम

राग - नट बिलावल ताल - भजनी ठेका

जहां मची हो लूट प्रेम की, वहीं पह मनवा जाए।
प्रेम ही प्रेम जहां हो फैला, जाए वहीं सुख पाए ।
विषय जगत न पीछा छोड़ें, डूबत वा में जाऊं ।
पर मन में तो आस प्रभु की, प्रेम-प्रभु को धाए ॥
अनन्त असीम अकाश है फैला, तारे झिलमिल झिलमिल ।
करत रूप तेरा ही परगट, मन कब तोहे पाए ।।
हों सिंहासनारूढ़ जहां तू, रहा जगत उपजाए।
मैं भी देखूं लीला तेरी, वहीं पह मनवा जाए ।
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, नगरी प्रेम बुलाओ ।
जग में मेरा तेरा छूटे, जीवन प्रेम सुहाए ॥

(८) समर्पण

राग- मिश्र सारंग ताल- केहरवा

माथे बोझ उठा न पाऊं, अर्पण चरणों में तेरे ।
थकी कमरिया, झुके हैं कंधे, देखत चरणों में तेरे ॥
डूबा काम मान मर्यादा, कब तक बोझ उठाऊं ।
तुम्हीं दिया है तुम्हीं सम्भालो, सौंपा चरणों में तेरे ॥
तू सानन्द असीम प्रभु जी, कैसे पाऊं मैं तोहे ।
करें कृपा तो दर्शन पाऊं, लागूं चरणों में तेरे ॥
करो कृपा हे गिरधर लाला, अब तो नैया डूब रही।
हाथ बढ़ाओ पार उतारो, नैया चरणों में तेरे ॥
तीर्थ शिवोम् हे कुञ्जबिहारी, आओ गलियन मोरी ।
मान तान मर्यादा सब ही, डाला चरणों में तेरे ॥

(९) नाम

राग- मिश्र भैरवी ताल- भजनी ठेका

हरि सिमरन हरि गुण प्रगटाए ।
दुविधा नाश करे सब मन सों, अन्तर गांठ हटाए ।
सिमरन मिले साधसंग कीने, संतन बड़े दयालु ।
अपना लेत बनाए जन को, पाप सकल कट जाए ।
सिमरो नाम एक अविनाशी, मेटनहारा भव का।
ताही शरण गहे जो मनवा, निर्मलता सध जाए ।
नारद सनकादिक प्रहलादा, सिमर सिमर भव उतरे ।
दर्शन हरि पाया अन्तर में, पापन सभी मिटाए ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, सिमरन नाम कराओ ।
ध्यान सदा हरि चरनन माही, मन दूजे न जाए ।।

(१०) गुरुदेव

राग - जोगिया ताल - केहरवा

मेरे मन वियोग की पीरा, हरे तू ही गुरुदेवा ।
प्रभु विरह में जलता हिरदय, शीतल करे तू ही गुरुदेवा ॥
आतम हीरा खोजन कारण, हारा भटक भटक मैं ।
अजहूं हाथ न आया कछु भी, मेल मिलाए तू गुरुदेवा ॥
हीरा पास तेरे गुरुदेवा, कृपा करे तो ही मैं पाऊं ।
नहीं तो पटक-पटक मर जाऊं, हाथ कछु न हे गुरुदेवा ॥
तीर्थ शिवोम् विनय कर जोड़े, तुम सर्वज्ञ अनन्ता ।
करो कृपा तो पाऊं हीरा, शरण तिहारी हे गुरुदेवा ॥

(११) समर्पण

राग- भूप ताल - केहरवा

पहने कपड़े पाप के, फिरत जीव जग माहीं।
चादर नहीं उतारे मन सों, सूझ पड़त कछु नाहीं॥
पड़ा मोह दुख भोगत रहता, सुख की आस न छोड़े।
पाप कर्म में सुख न मनवा, सुख अन्तर के माहीं॥
उलझा जीव पाप में ऐसा, छूट सके न वा से।
कौन बचावे कौन निकाले, पड़ा बीच भव माहीं॥
एक ही मारग है गुरुदेवा, चेतन नाम प्रदाता।
भाव भक्ति से शरण पड़े जो, पार करत छिन माहीं॥
तीर्थ शिवोम् शरण मो दीजो, विनय करत श्री चरणीं।
मैं हूं भूला जगत विषय में, बल अपना कछु नाहीं॥

(१२) विविध

राग काफी ताल - केहरवा

कार वही है कार वही, सविकार कभी भी रूप धरे न।
सार वही है सार वही, निस्सार कभी आ पांव धरे न॥
प्रीत वही है प्रीत वही, जो प्रतीत कभी भी दूर करे न।
नीति वही है नीति वही, जो अनीति की राह कभी भी चढ़े न।।
तन्त वही है तन्त वही, जो अनन्त की ओर ही लेत चले है।
संत वही है संत वही, सत मारग जो कभी त्याग चले न॥
तीर्थ वही है तीर्थ वही, शिव ओम् जो अन्तर मैल उतारे।
मनवा शुद्ध भये तब ऐसा, जग के वेग प्रवाह चले न॥

(१३) मन

राग - जौन पुरी ताल - धुमाली

राखि लेय भक्तन को अपने, कर किरपा रघुवीरा ।
निन्दक जाए जीवन विरथा, जलता हिरदय पीरा ।।
सकल पाप निन्दक ले जावे, संचित भक्त जो होवे ।
खात रहा डुबकी गोते ही, पात नहीं रघुवीरा ॥
जीवित रहे तो दुख उठाए, मर कर जाए नरक में ।
लोक जात, परलोक भी जाए, शरण नहीं रघुवीरा ॥
तीर्थ शिवोम् धन्य प्रभु मोरे, क्या लीला उपजाई ।
जो जैसा मन, वैसा देखे, रहा हसत रघुवीरा ॥

(१४) गुरुदेव

राग - शिव रंजनी ताल - केहरवा

दीनदयाला सद्गुरु मोरा, कृपा करी आ दर्शन दीना ।
मुझ ग़रीब को दीन जान कर, वरद हस्त माथे रख दीना ।।
भया कृतारथ दर्शन पाए, चरन धोय चरनामृत लीना ।
खोल किबार हृदय का अपने, बैठक कारण आसन दीना ।।
हृदय का करूं निछावर, जो कुछ पास सो अर्पन कीना ।
करी कृपा मो दीन-हीन पर, परमारथ का मारग दीना ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभु गुरुदेवा, हूं मैं कुटिल कुकर्मी पापी ।
विरद आपना लेय सम्भालो, पड़ा जगत हूं मैं मतिहीना ॥

(१५) समर्पण

राग - आनन्द भैरवी ताल - भजनी ठेका

वासना रूप अनेक धरे ।
पूरी होत नहीं कबहूं भी, चाहे कछु करे ॥
जौं लगि वासना जीवित मन में, होत प्रकाशा नाहीं ।
मनवा सदा दुखी चंचल ही, अन्ते नरक परे ॥
हिरदय जलता क्रोध लोभहिं, भला-बुरा नहीं जाने ।
सपनेहूं भी सुख न पावे, सतत् निरन्तर जरे ॥
जलत वासना रहा जगत यह, जा को देखो दुखिया ।
तुम ही एक बचावन हारे, चाहे खोटे खरे ॥
तीर्थ शिवोम् पड़ा चरणों में पार करो प्रभु मोहे ।
हौं तो सदा तुमारी शरणी, शरणीं सो ही तरे ॥

(१६) असन्त रूप

राग -पीलू ताल - केहरवा

अपनो भलो होय न होय, औरन काम बिगारत जाई ।
दुष्टन यही कुलच्छन ऐसा, जो उन देवत नित्य बुराई ॥
औरन काम बिगारन कारण, अपना कारज लेत बिगारे ।
ऐसा रूप रचा दुष्टन प्रभु, करे बुरा पर मन हर्षाई ॥
तीर्थ शिवोम् नमन दुष्टन को, भला करे जो उसे बुराई ।
या में ही वह शोभा मानत, या ही समझत निज चतुराई ।।

(१७) गुरुदेव

राग - रागेश्वरी ताल - केहरवा

धारूं हिरदय, करुं वंदना, सद्गुरुदेव तुम्हारे चरना ।
तुम हो दीनदयाला गुरुवर, भक्तन के हो दुख हरना ।।
कहत कठिन है भक्ति कलियुग, सरल तुम्हीं कर दीनी ।
चेतन नाम दियो बैठाए, जान गरीब, मेरी रसना ॥
जो भी द्वारे आवे तुमरे, कल्मिश मेटे अपने मन के ।
भक्तवत्सल हो, प्रणतपाल हो, पार करत हो आए सरना ।।
जग में दुखियां आवें तुम पह, शरण कहीं जो न पावें ।
तुम अनन्त बलवन्त प्रभु हो, दीनन कष्ट सकल हरना ।।
तीर्थ शिवोम् करत विनती मैं, मुझ गरीब पर दया करो।
तुमरे तो भण्डार अखुट हैं, कठिन है नाहीं कुछ करना ॥

(१८) मीरा प्रेम

राग - देवगिरि बिलावल ताल-खेमटा

दर्शन तुमरे तुम से मांगूं, कृपा करो हे मीरा ।
दर्शन तुमरे पाप कटत हैं, निर्मल होत सरीरा ।।
किरपा तुमरी, प्रेम हृदय में, भक्ति-भाव अनन्ता ।
प्रेम की वर्षा दीनन होवत, जाग्रत विरह पीरा ।।
कृष्ण- कन्हैया तान सुनावत, वंशी मधुर रसीली ।
अमृत-पान करे जो जी भर, बैठ जमन के तीरा ॥
तीर्थ शिवोम् यह विनती तो सों, मीरा श्री चरणों में ।
हृदय जलत, जल प्रेम बहाओ, पाए मनवा धीरा ।।

(१९) चेतावनी

राग - मिश्र भैरवी ताल - केहरवा

सोचत सोचत जीवन बीता, रोवत रोवत जीवन बीता।
अब भी सोवत रह्या है जाई, अभी भी रोवत रह्या है जाई॥
खावत खावत अन्न खुटाया, अब भी खावत रह्या तू जाई।
भोगत भोगत निर्बल इन्द्रिन, अब भी भोगत रह्या तू जाई॥
देखत-देखत जगत विषयन को, अब भी देखत रह्या तू जाई।
बोलत बोलत थाकी रसना, अब भी बोलत रह्या तू जाई॥
तीर्थ शिवोम् कटा दुख ही में, अब भी सहन करत तू जाई।
न पछताए करनी अपनी, अब भी करत रह्या तू जाई॥

(२०) विनय

राग - गोरख कल्याण ताल - धुमाली

जीव सदा मांगत ही रहता, कौन कमी घर तेरो।
जा को जो अभाव है खटके, रहत हो देत सदा ही ढेरो॥
पापी को तुम तार दियो है, यह वश में है केवल तेरो।
काढ़ लियो जल डूबत को तुम, पार लगाया ताका बेड़ो।।
सुख दुख से तुम्हीं छुड़ाओ, आवागमन मिटाओ।
मन निर्मल तुम्हारी किरपा, छिन में कट जाए सब झेरो॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, दुख-भंजक जग दाता।
शरणी आन पड़ा हूं तेरे, करो निबेरो आए मेरो॥

(२१) आनन्द

राग - सहाना ताल - केहरवा

मतवारी मतवारी, भई हूं मैं मतवारी ।
सुध-बुध मन की सारी बिसरी, त्यागी दुनिया सारी ॥
ऐसा नाम हृदय में लागा, छूटत नहीं छुटाए ।
मन में, तन में प्रेम समायो, रहती चढ़ी खुमारी ।.
गाय गाय मन निर्मल होया, ममता तृष्णा भागी ।
रहत पिया ही सन्मुख हरदम, न मीठा न खारी ॥
हृदय बंधा है श्री चरणों में, लटक प्रभु मन लागी ।
कैसा लेना, कैसा देना, छूटी सभी बीमारी ॥
दिया सहारा है प्रभु मोहे, उतरन पार नदी के ।
तीर्थ शिवोम् भई आनन्दा, रहत लगी ही तारी ॥

(२२) विनय

राग - हंस कंकणी ताल - केहरवा

बार-बार मैं जग में आया, आवागमन में थाका ।
पुनि-पुनि त्रास काल की पाए, पाय पाय मैं थाका ॥
यह जग भ्रम है, भ्रम यह माया, भ्रम ही आवनगमना ।
दूर करो इस भ्रम को मन से, इस भ्रम से मैं थाका ॥
साथ ले चलो देसा अपना, जहां न भ्रम न माया ।
हंसा खेल करत दिन राती, विरथा सुख दुख थाका ॥
तीर्थ शिवोम् हे साहिब मेरे, विनय करूं कर जोरी।
मैं न जानूं साधन भजना, करत जान में थाका ॥

(२३) वन्दना

राग -दरबारी ताल - केहरवा

चूक का दण्ड बहुत मैं भोगा, छमा चूक हो मोरी ।
माथा रगड़ूं द्वारे तुमरे, भूल भई है मोरी ॥
तुम को हौं बिसरायो मन सों, जग विषयन में लागा ।
ताका फल भी बहुत है भोगा, बुरी गति है मोरी ॥
बना भिखारी द्वारे ठाड़ा, अर्जी श्री चरणों में ।
करूणामय प्रभु नाम तिहारो, विनय बिचारों मोरी ॥
ऐसी विपद पड़ी है मो पर, दीखत न हितकारी ।
वेग उबारो, पार करो प्रभु, डूबत जात है मोरी ॥
तीर्थ शिवोम् गुरु तुम दाता, तुम ही सकल विधाता ।
तुमरी नज़र कृपा हो मुझ पर, करत वन्दना तोरी ॥

(२४) समर्पण

राग - आभोगी ताल - दादरा

राम तुम पर ही टिका है, महल यह जीवन प्रभु ।
तुम ही साजन प्राण प्यारे, हो तुम्हीं जीवन प्रभु ॥
हाथ तुमरा मेरे सिर पर, कर दिया शीतल मुझे।
रोम में हर रंग में, दीखत तुम्हीं जीवन प्रभु ॥
तुमने दीना, तेरे अर्पण, जीव का न कुछ यहां ।
दे दिया तुमने दिया जो, तुम को ही जीवन प्रभु ॥
तुमरी किरपा से ही मेरे, काम सब पूरन हुए।
अब कोई आशा न बाकी, धन्य यह जीवन प्रभु ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् गुरुवर, कर कृपा दर्शन दिए ।
सूखा मन था, रस है घोला, पाया सुख जीवन प्रभु ।।

(२५) चेतावनी

राग - आभोगी कान्हरा ताल - केहरवा

मन में सोच विचार यह भाई ! क्या करना ? क्या करत रह्या ।
अच्छे होए तो अपने लेखे, बुरा प्रभु के धरत रह्या ॥
अपना दोष तो देखे नाहीं, औरन अवगुण देख रह्या ।
ऐसे करि करि गर्व बढ़ाया, पीछे करनी भरत रह्या ।।
जा परिवार की खातिर तूने, पाप ही कर्म कमाया है।
वह क्या तेरे साथ निभेंगे, जिनके लिए तू मरत रह्या ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो हे मूरख, अब भी अवसर है बाकी ।
नेक कमाई, राम भजन कर, बीता गया जो करत रह्या ।।

(२६) वन्दना

राग - नन्द ताल- रूपक

हे प्रभो लीला तुम्हारी, मन को मोहित है करे।
मन भरे आनन्द वह है, तन को भी शीतल करे ॥
जिसको है लीला यह दीखे, वह ही जन होता सुखी ।
जिसको भरमाये यह माया, वह तो दुख में ही मरे ॥
सद्गुरु किरपा जो पाए, चेतना देखे वही ।
होत लीला उसके अन्दर, भव के बंधन से तरे ॥
उतरते माया के परदे, उसके जो आनन्द में।
मन करे निर्मल वह अपना, जात माया से परे ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् गुरुवर, धन्य है किरपा तेरी ।
तार देती दीन को वह, चेतना सन्मुख करे ।।
रोम रोम अपराधी तेरा, अंग अंग में चोर हूं।
भली नहीं कुछ करनी मोरी, पापी दम्मी घोर हूं ॥
छोड़ तेरा दर कहां जाऊँ मैं, दूजा नहीं ठौर है ।
एक छोर जग मिथ्या बनया, दूजे तारे छोर हूं ॥

(२७) गुरुदेव

राग- पहाड़ी ताल - दीपचन्दी

अगम का वासी सद्गुरु मोरा, जन कारण अवतारा।
अविनाशी सुखराशि सद्गुरु, प्रेम स्वरूप उतारा॥
चरण कमल हिरदय में राखो, मन में ध्यान गुरु का।
जगत फंद से छूटे पीछा, पा जाओ निस्तारा॥
अमृत बूंद झरे घट माही, किरपा सद्गुरुदेवा।
या चरणामृत पान करे जो, मुकती जगत पसारा॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, चरणी राखो मोहे।
दास तुम्हारा बना रहूं मैं, दूजा नहीं सहारा॥

(२८) विनय

राग - आनन्द भैरव ताल - भजनी ठेका

किसे जगत में अच्छा बोलें, कौन बुरा है बनया।
सारा जगत प्रभु उपजाया, वही चलाए, चलया॥
जा को थिर राखे मेरा साईं, वह ही थिरता पावे।
जा को थिरता देत है नाहीं, वही हिलाए, हिलया॥
होवे किरपा जिसकी उस पर, सुखी वही जन होता।
सुख दुख पावे जीव सभी कुछ, वही दिलाए, मिलया॥
तीर्थ शिवोम् साईं जी मोरे, तेरे क्या है कहने।
कोई न जाने लीला तेरी, वही दिखाए, दिखया॥

(२९) आनन्द

राग- परज ताल - भजनी ठेका

मेरा मन प्रभु चरनन ही लागा ।
पुरुष नहीं दूजा मैं जानत, एक ही सों अनुरागा ।।
दूजा ध्यान धरे जो मनवा, अंध कूप माया में ।
माया विष न पान करूँ मैं, जग से भया विरागा ॥
प्यास प्रभु दर्शन की लागी, मोह लियो मन मोरा ।
एक भरोसा, एक ही आशा, भोगन विषयन त्यागा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु को कोई, सेवक राम मिला दे।
दर्श बिना मन चैन न आवे, हरि दर्शन मन पागा ॥

(३०) गुरुदेव

राग- मिश्र काफी ताल - भजनी ठेका

सद्गुरु कृपा अमोलक कीनी, अपने धाम दियो मोहे वासा ।
जहां गए से लौटत नाहीं, आसा जग की नहीं निरासा ॥
धाम में वासा करने कारण, ध्यानी ध्यान लगावें ।
गुरु कृपा बिन मिलत है नाहीं, विरथा करत है आसा ॥
वेद उचारें, करें जाप जप, माथा रगड़ें द्वारे ।
वासा धाम कठिन है मिलना, होवत जतन निरासा ॥
तिलक लगावें, तीरथ नहावें, पर गुरु चरण न पकड़े।
जब लौं आश्रय गुरु न लेवें, क्योंकर पावे वासा ॥
तीर्थ शिवोम् गुरु जी मोरे, दास सदा मैं तेरा ।
बांह मेरी को पकड़े रहियो, कृपा का रहूं पियासा ॥

(३१) विविध

राग- मिश्र पीलू ताल - केहरवा

जीव प्रलाप करत दुख पावे, पर जग नहीं तियागे ।
फिर फिर भ्रमता भोगन में ही, विषयन को ही भागे ॥
काम क्रोध मद् लीन सदा ही, सिमरन राम करे न ।
लगा रहे जग के ही कारज, जग ही भागे भागे ॥
करत भजन, करते जो सेवा, मन आनन्द समाए ।
जपत नाम नारायण हरि का, करते नहीं अभागे ॥
धन्य है करनी, धन्य व्यौहारा, धन्य है जीवन तिन का ।
हरि सेव में जीवन अर्पण, प्रेम-हरि मन जागे ॥
तीर्थ शिवोम् धन्य सतसंगत, पार करे डूबत को ।
मद विकार अवगुण सब काटे, चरन- हरि मन लागे ॥

(३२) विविध

राग - छायानट ताल - केहरवा

जा मन घोर अंधेरा छाया, ताही मनवा प्रभु बसे है ।
ताही मन लीला प्रभु व्यापे, ताही मनवा प्रभु हँसे है ।।
या मन अन्दर बाजे गाजे, या ही मनवा सर्व समाया ।
सुन्दर बाग बगीचा या मन, या ही मनवा जगत बसे है ॥
अनहद नाद प्रकाश अलौकिक, घटित यही मन होवे ।
या मन बाहर है कछु नाहीं, या ही मनवा जीव बसे है ।
दूर अंधेरा परगट सब हो, जीव पछाने अपना आपा ।
प्रभु कृपा हो निर्मल मनवा, पाप ताप संताप बसे है ॥
तीर्थ शिवोम् यही मन अन्दर, जगत समाया, प्रभु विराजे ।
मुक्ति बंधन या मन अन्दर, सर्व प्रदाता प्रभु बसे हैं ॥

(३३) शुद्धमन

राग -भैरवी ताल - केहरवा

सीस कटावे जो मन अपना, भव से उतरे पार वही मन।
ममता तृष्णा जा मन नाही, जात है बंधन छूट वही मन ।।
करे त्याग का गर्व कोई मन, ज्ञानी बनत कोई सिर ऊंचा।
अहं भक्त का कोई राखे, जात जगत में डूब वही मन ।।
जोगी भोगी कोई बनता, जगत तियागे, जगत विराजे।
मन ही खेल प्रभु विस्तारा, जगहिं देवत थूक यही मन ।।
या मन थिरता, या मन चंचल, तपसी, दाता बिरही बन।
मन लंगोट लगाए घूमत, जात पात संसार यही मन ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभु जी मोरे, मन की गति कोई न जानत।
जो मन अपने काबू राखे, न दुख कोई, सुखी वही मन ।।

(३४) गुरुदेव

राग - तिलक कामोद ताल - दादरा

डाली ताली, खुल गया ताला, अन्तर में उजियारा।
दिया जगाए सोया मनवा, ऐसा सद्गुरु मोरा ॥
दीखत साजन दूर था मोहे, अन्तर दिया लखाए।
दूरी दूर, प्रभु घट माहीं, ऐसा सद्गुरु मोरा ॥
अमृत पान कराया मोहे, दूर सकल अंध्यारा।
अन्तर बाहर दीखन लागा, ऐसा सद्गुरु मोरा ॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, चरण शरण हूं तोरी।
डूबत जल से काढ़ लियो है, ऐसा सद्गुरु मोरा ॥
जब गुरु किरपा है पाई, क्या है चिन्ता फिर तुम्हें।
जब गुरु करतार तेरा, ले बचा लेगा तुम्हें ॥

(३५) गुरुदेव

राग - मिश्र खमाज ताल - केहरवा

अनदेखा देखा किरपा से, सद्‌गुरु किरपा कीनी ।
माया नींद पड़ी थी मैं तो, सुरती सद्‌गुरु दीनी ॥
सूरज बिन देखा परकाशा, बिना कान के वाणी ।
बिना रूप के रूप दिखाया, किरपा बिन न चीहनी ॥
शीतल अगन बिना वर्षा के, मन की गांठ है खोली।
मन की सगली आशा तृष्णा, एक-एक कर बीनी ॥
कहें किसे ? देखा क्या मैंने, यह है अकथ कहानी ।
गुरु किरपा ही सकत दिखाए, अनुभव अन्तर कीनी ॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, डोलत रही अंधेरे ।
पकड़ी बांह, दूर तम सारा, सुध आ मोरी लीनी ॥

(३६) वन्दना

राग- मालकौंस ताल- धुमाली

दीन असहाय बना मैं, सामने तेरे खड़ा।
क्या कहूं करनी मैं अपनी, सिर किए नीचा खड़ा ॥
तूने तो भेजा मुझे था, जा के कर तू साधना ।
साधना तो कुछ करी न, पाप में ही मैं पड़ा ।
अब बचावन हार तुम बिन, दूसरा कोई नहीं ।
अपने बल मैं बच न पाऊं, दर तेरे हूं आ पड़ा ।।
तू ही राखनहार सबका, तू ही देवनहार है।
मांगता हूं भीख तुमसे, कर दया शरणी पड़ा ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् मेरा, मुंह तो इस काबल नहीं।
याद कर तेरी दया को, मांगने को हूं खड़ा ।।

(३७) गुरुदेव

राग - भीम पलासी ताल - केहरवा

गुरु कृपा तब जानिए, जब शोक मोह मिट जाए।
सभी जगह दीखे प्रभु प्यारा, दुविधा सब कट जाए ॥
अपरम्पार गुरुवा मेरा, अनुपम किरपा करता ।
लेत मिलाए दीनन को वह, आपा मन से जाए ॥
केते खोजत फिरे गुरु को, गुरु न मिलया कोई।
अन्तर में जो राम मिलाए गुरु कहावे सोई ॥
गुरु बनन सब तरसते, गुरु गर्व न होई ।
गुरु सवारे जीव को, ता का मल हट जाए ॥
तीर्थ शिवोम् गुरुवर भेटे, जा मन निर्मल होई ।
जगत पसारा क्षीण भया सब, जनम मरण कट जाए ॥

(३८) विरह

राग - जौनपुरी ताल - भजनी ठेका

आओ आओ साजन प्यारे, दर्शन मोहे दीजो।
कब की जोहत मारग तेरा, हिरदय अगन बुझाजो ॥
जो तुम दूर, दूर सुख सारे, तुम समीप आनन्दा ।
तुम बिन तड़पत बीता यौवन, बिरहिन अंग लगाजो ॥
मन मलीन, छाया तम ही तम, आश किरन न दीखे ।
तुमरी आश लिए मन बैठी, मन की पीर मिटाजो ॥
तीर्थ शिवोम् रही मैं भूली, रूप जो मन को मोहे ।
अब तो आओ रूप दिखाओ, सेवा चरण कराजो ॥

(३९) गुरुदेव

राग- यमन ताल - केहरवा

प्रेम का दाता, प्रेम का रक्षक, मेरा सद्‌गुरु प्यारा।
दीनन भक्ति-भाव प्रदाता, मेरा सद्‌गुरु प्यारा॥
दूर हटे न भक्तन मन सों, पल इक, एक घड़ी भी।
अन्तर सन्मुख बना ही रहता, मेरा सद्‌गुरु प्यारा।।
प्रेम का सागर सद्‌गुरुदेवा, बांटत प्रेम अनोखा।
जगत हटाता, प्रेम जगाता, मेरा सद्‌गुरु प्यारा॥
शरण गहे जो सद्‌गुरुदेवा, चरण-शरण वह पावे।
कर चेतन अन्तर परकाशित, मेरा सद्‌गुरु प्यारा॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु गुरुदेवा, दाता तुम सा नाहीं।
प्रेम कराए, राग मिटाए, मेरा सद्‌गुरु प्यारा।।

(४०) गुरुदेव

राग- अड़ाना ताल - केहरवा

गुरु मिल्या, मन शीतल होया, दूर भया भ्रम सारा।
जग-वन में भटक रहा था, फिरता मारा मारा॥
गुरुकृपा वर्षा मन ऊपर, महक उठी हरियाली।
पूरा भरा सरोवर मन का, जग-कलेश को जारा॥
मन भरपूर हुआ आलोकित, प्रेम ही प्रेम भरा है।
फूट पड़ी है अन्तर से ही, भक्ति-भाव की धारा॥
हिरदय कमल तिन्हां खिल पाया, गुरु सार जिन जानी।
संसारी जग में ही डूबा, दुख पावत बेचारा।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, मन-तन तेरे अर्पन।
तू ही तू दीखे जग सारे, तेरा आर न पारा।।

(४१) अन्तर् प्रेम

राग - देस ताल - भजनी ठेका

कसक प्रेम की हिरदय माहीं, वैद बेचारा नबज टटोले।
कैसे जाने, क्यों पहचाने, नबज हृदय की बात न खोले॥
जाओ वैद जाओ घर अपने, रोग मेरा तुम जानत नाहीं।
जिसने रोग दिया अन्तर का, वह तो अन्तर में ही डोले॥
रोग नहीं यह भौतिक जग का, रोग नहीं यह औषध जग का।
रोग यह जावन का है नाहीं, जब तक अन्तर वैद न बोले॥
अन्तर- गुरु ही वैद मेरा है, अन्तर- गुरु ही औषध।
अन्तर गुरु ही जाग्रत अन्तर, ता ही रोग दूर यह हो ले॥
तीर्थ शिवोम् वैद गुरुदेवा, तुम ही जानत रोग जो मेरा।
तुमरी कृपा बिना हे प्रभु जी, बढ़त रोग है हौले-हौले॥

(४२) विरह

राग -सूर मल्हार ताल - केहरवा

सावन मेघा बरस रहा है, सुखी नार सब भई सुहागिन।
दुखी वही, जो पर चित्त लायो, सुखिया कैसे भये दुहागिन।।
सावन आया सुख बरसाए, तन मन में आनन्द भरे है।
पर संसारी ग्रहण करत न, कैसी दुखिया भयी अभागिन।
प्रेम पियाला भरा सामने, पर जो नाहीं देखत उसको।
जग विषयन ही जाय रमी है, कैसी नार भयी मन्दभागिन।
तीर्थ शिवोम् प्रभु रघुवीरा, तेरी मौज बंधा जग सारा।
जा तू चाहे, वे ही छूटे, नहीं तो जीव रहा जग लागिन।।

(४३) अन्तर् प्रेम

राग - विहाग ताल- रूपक

प्रेम तू कर उस प्रभु से, जा के सब कुछ पास है।
दूसरे तो मांगते सब, कुछ भी नाहीं हाथ है ।।
जीव जो देखे उसे न, सुख वह पा सकता नहीं।
सुख का सागर तो प्रभु है, जो कि अन्तर साथ है ॥
जब गुरु किरपा है होती, तब प्रभु है दीखता।
तब ही ऐसा भान होता, वह तो हरदम साथ है ॥
वह सुने जिसका पुकारा, तब दया करता प्रभु।
दीखता अन्तर ही बैठा, न था समझा साथ है ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् प्रभु वर, शरण आया मैं तेरी।
तू दिखा दे अपना जलवा, यह भी कि तू साथ है ॥

(४४) नाम

राग- धानी ताल- खेमटा

नाम तेरा जग में बरसे, जानता सो जानता।
जो नहीं इसको है जाने, वह नहीं पर मानता ॥
जो किरपा से तेरा, भेद यह पा जाए है।
हर जगह वह नाम देखे, नाम ही सब जानता ॥
मन से ममता और तृष्णा, दूर होती सब तभी।
जग में केवल तू ही दीखे, तुझको ही पहचानता ।।
न ही नापा जाए जग में, न ही नापे बिन मिले।
किरपा ही है नाप उसका, किरपा से ही जानता ।।
तीर्थ ऐ शिव ओम् मालिक, मैं नहीं कुछ जानता।
मैं कृपा तेरी ही जानूं, है कृपा मन मानता ॥

(४५) प्रेम

राग – बडहंस सारंग ताल - घुमाली

धन को देय, प्रेम को ले लो, ऐसे प्रेम बिकत है नाहीं।
प्रेम, हृदय का भाव नहीं जो, ऐसा प्रेम टिकत है नाहीं॥
प्रेमी खेंचे प्रियतम हिरदय, प्रियतम अपनी ओर ही खेंचे।
प्रेम जो केवल एक दिखावा, ऐसा प्रेम खिंचत है नाहीं॥
विंध जाए जब भक्त का हिरदय, प्रभु चरण में प्रभु प्रेम में।
तो ही जानो प्रेम है साचा, ऐसा प्रेम घटत है नाहीं॥
प्रेम के आगे तुच्छ जगत है, प्रेम की महिमा जग क्या जाने।
हिरदय अन्दर अगन लगी हो, ऐसा प्रेम दिखत है नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, मेरा प्रेम तेरे चरणों में।
लगन तेरी ही, ध्यान तेरा ही, ऐसा प्रेम गलत जो नाहीं॥

(४६) विविध

राग -यमन ताल - केहरवा

सारा जीवन भटकत काढ़यो, अब भी भटक रह्या तू।
अन्तर्यामी अन्तर तेरे, ताको नाहीं देख रह्या तू॥
भटकत बन बन, तीरथ भटके, भटकत मंदिर द्वारे।
अन्तर ओर निहारत नाहीं, मन न देख रह्या तू॥
पुस्तक के पन्ने उलटावे, उलटे सीधे सांस चढ़ाए।
अन्तर प्रेम हृदय में नाही, ताहे राम न पाय रह्या तू॥
राम को खोजन कारण कोई, न चाहिए अस्वारी साधन।
अन्तर प्रेम ही साधन है इक, साधन बिन न पाय रह्या तू॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु के संतों, राम को जो तुम पाना चाहो।
राम के अर्पन, प्रेम राम से, कैसे राम न पाए रह्या तू॥

(४७) अन्तरानन्द

राग- अड़ाना ताल - केहरवा

भागता फिरता जगत में, मन वहीं चंचल बना ।
जो समाया मन ही मन है, मन वहीं मौनी बना ॥
जब जगत की वासना, होती कोई भी मन नहीं ।
मस्त मन, मन में ही रहता, मन वही मौनी बना ॥
जो जुड़ा रहता प्रभु से, झांकता जग में नहीं ।
न कोई तृष्णा न ममता, मन वही मौनी बना ॥
जब इशारा है करे, या लिख करे जो बात को ।
वह लगा जग में ही रहता, मन नहीं मौनी बना ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् तू भी, दे हटा जग सामने ।
चैन पा तू, सुख मना मन, मन वही मौनी बना ॥

(४८) उद्बोधन

राग - नट बिलावल ताल- भजनी ठेका

जग में कोई किसी का नाहीं ।
सब साधें अपना ही स्वारथ, काम हैं आवत नाहीं ॥
जब हो गरज पड़ी अपनी कुछ, आगे पाछे डोलें ।
मतलब पड़े किसी से कोई, आंख मिलावत नाहीं ॥
अच्छा करो किसी का कितना, याद न राखे कोई ।
एक बार भी काम न आएं, देवत सभी बुराई ॥
या जग का है नहीं भरोसा, गिरगिट रंग है बदले ।
कभी तो घूमत आगे पाछे, बात करत कभी नाहीं ॥
तीर्थ शिवोम् हे भोले मनवा, जग से आस न राखो।
नेकी करो, कुएं में डालो, बदले मांग करो कछु नाहीं ।।

(४९) उद्बोधन

राग- मिश्र काफी ताल - केहरवा

मैं को मारूं, मैं मरूं, पर मैं का मरना कठिन बहुत है।
मैं मरे बिन मुक्ति नाही, मैं का जरना कठिन बहुत है।।

मैं ही बनया जीव का वैरी, रहा नचावत जीव को वह है।
छूटन चाहे मैं सब कोई, मैं से तरना कठिन बहुत है॥

जीव का रस्ता रोक खड़ा है, लोहे की दीवार बना वह।
सकत वीर ही लांघ इसे है, मैं से लड़ना कठिन बहुत है॥

गुरुकृपा ही एक है मारग, देत हटाए मैं को जो है।
मारग दूजा है को नाहीं, मैं समझाना कठिन बहुत है॥

तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, मैं तो मैं से लड़ न पाऊँ।
मैं भटकाता रहता मोहे, पार निकलना कठिन बहुत है॥

(५०) प्रेम

राग - आनन्द भैरव ताल - धुमाली

जब लगन लगी श्री राम से है, जग की परवाह नहीं कोई।
मतलब क्या जग से अपना है, जग पकड़नहार नहीं कोई॥

जब राम से ही है नेह लगा, अब राम ही साजन मेरा है।
है राम ही एक भरोसा अब, बिन राम सहारा नहीं कोई॥

वह एक ही राखनहारा है, वह एक ही दाता है सबका।
वह एक ही कर्ता हर्ता है, दूजा कर्ता है नहीं कोई॥

शिव ओम् प्रभु साजन मेरे, है पल्ला पकड़ा एक तेरा।
तुम से ही इक आशा मेरी, है और अधारा नहीं कोई॥

(५१) विरह

राग- ललित ताल- धुमाली

घायल हिरदय विरहा मोरा, पर पी आवत नहीं रह्या ।
टीस कलेजे उठत रहत है, मुख दिखलावत नहीं रह्या ।।
नयनन हिरदय जलत हैं दोनों, तड़पत निसदिन याद पिया में ।
काहे प्राण सहेजूं अपने, समझ यह आवत नहीं रह्या ॥
कोई संदेशा मोर पीया को, जाय सुनाए मैं विरही का ।
काहे करत परीक्षा मोरी, मन सुख आवत नहीं रह्या ॥
तीर्थ शिवोम् पिया बिन पल पल, युग समान मोहे लागे।
खड़ी चौराहे रस्ता देखूं, पर प्रभु आवत नहीं रह्या ।।

(५२) विरह

राग - मालकौंस ताल - केहरवा

ज्यों ज्यों बिरहा अधिक मन माहीं, त्यों त्यों अगन अधिका अधिकाई ।
ज्यों ज्यों बढ़े वेग नदी का, त्यों त्यों जल उछलत अधिकाई ॥
राम मिले तो ताप यह शीतल, राम बिना यह ताप बढ़ाई ।
कैसे पाऊं राम पियाहिं, जब लगि अगन न हो अधिकाई ॥
राम ही सागर, राम ही जल है, हौं तो केवल मीन समाना ।
हरदम जल में, जल बिन प्यास ही, प्यासहि अधिक अधिक अधिकाई ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, सुध नहीं लेत हमारी आय ।
बिन जल, जल में डूबत जाऊं, नीचे नीच अधिक अधिकाई ॥

(५३) वेदान्त

राग - शुद्ध सारंग ताल - केहरवा

राम स्नेही राम को चीहने, राम रह्या अन्तर में व्यापक।
राम-स्नेही दृष्टि अन्तर, ताही देखत रामहिं व्यापक॥
बाहर खोजत भटकत हारा, नजर राम न कभी, कहीं भी।
जो देखा अपने मन अन्दर, अन्दर बाहर रामहिं व्यापक॥
अन्तर दृष्टि पाने हेतु, प्रेम-राम ही एक उपाय।
प्रेम-राम जो अन्तर होवे, दिखत राम घट ही में व्यापक॥
तीर्थ शिवोम् राम प्रभु मोरे, प्रेम हृदय में भर दो मोरे।
मैं भी देखूँ लीला तेरी, घटत जो अन्तर सर्वाव्यापक॥

(५४) प्रेम

राग- भूपाली ताल- केहरवा

जग को छोड़ राम के दासा, जग से आसा राखो काहे।
धारा हिरदय प्रेम-प्रभु का, प्रेम जगत से राखो काहे॥
कौन कमी है राम के घर में, वह दाता है जग सारे का।
जो मांगन हो राम से मांगों, जग को कुछ भी भाखो का॥
सुख सारा प्रभु सेज समाया, जग बंधन जो देत छुड़ाए।
काहे भोगन तू लिपटाना, जगत विषय को चाखो काहे॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, मैं तो दास सदा ही तेरा।
आस सहारा छोड़ तुम्हारा, खेह जगत की फाको काहे॥
हो रही वर्षा ही वर्षा, सुख की वर्षा चैन की।
प्रकट प्रेम स्वरूप सब में, वेल आनन्द लैन की॥

(५५) गुरुदेव

राग - भिन्न षडज ताल - केहरवा

गुरु ने ऐसी कृपा करी है, शब्द का हुआ धमाका।
फूटा गगना देखत देखत, बिजली बिना कड़ाका॥
शत्रुदल जो बैठा अन्दर, दहक उठा शंका में।
अब तो भागन वेला आई, फहरा उठी पताका॥
मार काट ऐसी मन अन्दर, शक्ति-गुरु मचाई।
तम रज भागा पांव सिर पर, ऐसा गुरु लड़ाका॥
कौतुक ऐसा गुरुवर कीना, दशा है बदली मन की।
देख देख कर अचरज होता, करता जगत श्लाघा॥
तीर्थ शिवोम् धन्य गुरुदेवा, धन्य तुमारी किरपा।
मनवा मोरा बदल दियो है, गाऊं गुण मैं ता का॥

(५६) उद्बोधन

राग -खमाज ताल - केहरवा

जो तेरे मन दोष बसा है, दोष ही दीखत जग के माहीं।
जो मन तेरा निर्मल होवे, दोष न दीखत जग के माहीं॥
जैसा मन तैसा जग दीखे, दोषी दोष ही देखत रहता।
गुणिया देखत गुण ही फैला, गुण जा मन, गुण ही जग दीखत॥
जो देखत मन अपना नाहीं, देखत मन औरन के रहता।
अवगुण संचय करता अन्तर, होवत दुखिया जग के माहीं॥
तीर्थ शिवोम् हे भोले मनवा, काहे दोष पराए लागा।
जा की करनी, वा भुगतेगा, तू क्यों चंचल जग के माहीं॥
अगन वासना तन में जलती, राम भजन बिन जात है नाहीं।
भोग-वासना अगन बढ़ावे, भोग से अगन बुझत है नाहीं॥

(५७) मन

राग -शिव रंजनी ताल- भजनी ठेका

मन को चाहे कितना घेरो, पर वह काबू आवत नाहीं।
बोध-प्रबोध देयो कितना भी, उच्छृंखलता जावत नाहीं॥
नीति- अनीति नहीं कछु देखत, पाप न पुन्न विचारत यह मन।
साध संग सत-संगत कितनी, बात भली पर भावत नाहीं॥
गुरु की सीख, वेद-मर्यादा, कुछ भी नाहीं लागत ताके।
जो मन आवे करत है सोई, परमारथ की चाहत नाहीं॥
कैसा भाव, स्वभाव है कैसा, कैसी उसकी सोच बनी है।
मैं तो समझ न पाऊं कुछ भी, कैसे भी वश आवत नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, काय करूं मैं मन का अपने।
समझा समझा थाका मैं तो, ता ही समझ में आवत नाहीं॥

(५८) उद्बोधन

राग - वृन्दावनी सारंग ताल - केहरवा

फिर यह अवसर मिलेगा नाहीं, निर्मल कर ले मन को अपने।
जाने कब का है मैला, मैल उतारे मन सो अपने॥
न जाने कब होए जाना, छोड़ यह देहा, छोड़ यह नगरी।
रहे हाथ मलते ही अपने, कर शिंगार ले मन को अपने॥
सतगुरु ऐसा घाटपियारे, निर्मल जल है नाम का साबुन।
मलमल धो धो मैल उतारे, साफ तू कर ले मन को अपने॥
जितना पलटे जग के पासे, उतना मैल चढ़े गा मन पर।
जितना जाए सतगुरु चरणी, उतना चरणीं मन को अपने॥
शिवोम् कहूं समझाए, जीवन बीता पल पल जाए।
अवसर का तू लाभ उठा ले, तू चमका ले मन को अपने॥

(५९) विविध

राग - दरबारी कान्हड़ा ताल - केहरवा

तज अभिमान करे जो कर्मा, सोई साचा ज्ञानी जानो।
कर्म करे, कर्मन से न्यारा, सोई साचा ध्यानी जानो॥
जग में रह कर दूर हो जग से, ध्यान प्रभु में लगा निरन्तर।
दीखे कर्ता, रहे अकर्ता, कर्म का जाननहारा जानो॥
राग या द्वेष कोऊ से भी न, जग को रूप प्रभु का देखे।
सबकी सेवा आदर सबको, रहत जगत पर न्यारा जानो॥
तीर्थ शिवोम् जाऊं बलिहारी, ऐसे जन की, ऐसे मन की।
किरपा ऐसे जन पर होवे, पार उतारा भव से जानो॥

(६०) मन

राग - मिश्र भैरवी ताल - भजनी ठेका

जग को तो उपदेश करे पर, अपना मन तो मलिन बनो है।
भरी वासना मन के माहीं, मनवा जग आसक्त बनो है॥
जैसे आभूषण हो झूठा, ऊपर सोना, अन्दर ताम्बा।
ऐसे मिथ्या वक्ता मानो, मन मलीन उपदेश घनो है॥
इधर-उधर का पाठ-पठन कर, लागत जग में बात बनावन।
करनी कुछ, कथनी कुछ दूजी, ऐसो वह मक्कार बनो है॥
ऐसा जीव न अंकुश कोई, जो मिल्या सो उसे बिगारे।
डूबे आप, डुबो वे दूजन, ऐसो तारनहार बनो है॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, बचा रहूं मिथ्याचारी से।
साची शरण, साच उपदेशा, मनवा तो ही साच सधो है॥

(६१) विरहा

राग -मिश्र काफी ताल - कव्वाली ठेका

एक ही पीव हरिजी मोरा, दूजा पीव न कोई मोरा।
हरि बिन चैन नहीं पल मोहे, नहीं रहाए मनवा मोरा॥
हरि अनन्त अपारा मोरा, इक अंधा फिर पड़ा अंधारा।
हरि निकाले अंध कूप से, फलत जतन न कोई मोरा॥
तीर्थ शिवोम् हरिजी मोरे, लंगड़ा लूला बना अपाहिज।
एक भरोसे पड़ा हूं तेरे, दूजा नहीं कहूं जो मोरा॥

(६२) मन

राग- पहाड़ी ताल -दादरा

कभी मर यह जाय, कभी जी उठे है
यह कैसा बनाया है मन तू प्रभुजी।
कभी झुक यह जाए, तरफ जग के ऐसा
पकड़ में न आए यह मेरे प्रभुजी॥
यह रहता रमा भोग में ही कभी है
यह साधन में लगता कभी देवता बन।
बदलता ही रहता है यह रंग अपने
गति मैं न जानूं हे मेरे प्रभुजी॥
कभी वक्ता बन सीख दे यह जगत को
कभी पाप में रत ही हो कर यह रहता।
कभी ज्ञानी ध्यानी, कभी पापी दम्भी
यह कैसी रचाई है माया प्रभुजी॥
कभी उछल जाए सितारों के ऊपर
कभी पहुँच सूरज, कभी चाँद में है।
कभी जा उतरता यह पाताल में है
यह ऐसा घुमक्कड़ है मेरे प्रभुजी॥
समझ है न पाया यह शिव ओम् मन को
करे साथ चंचल यह तन को भी अपने।
कभी छिप वह जाए कभी हो उजागर
अजब यह पहेली है मेरे प्रभु जी॥

(६३) विरहा

राग - हंसश्री ताल - भजनी ठेका

बिरहिन रहती जोवत निसदिन, राह पिया की कब वह आवे ।
उभरत आहें, हरदम हिरदय, चैन नहीं पल भर वह पावे ॥
अन्दर अन्दर जियड़ा जलता, बाहर दीखे कुछ भी नाहीं ।
जल भुन भयी भसम की ढेरी, कबहूं दर्श प्रभु वह पाए ॥
जगत ठगत या नार सदा ही, सहन करे वह ।
मुख सो बोले कुछ भी नाहीं, सोचत कभौं पिया वह पावे ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, करो कृपा अब या दुखिया ।
पीर कलेजे सहन न होवत, कब बेला जब पी पा जावे ॥

(६४) उद्बोधन

राग - गौड़ सारंग ताल - कव्वाली ठेका

राम राम क्या शोर मचावे, राम सदा ही पास है तेरे ।
राम को जब भी याद करे तू राम होत है सन्मुख तेरे ॥
ओढ़ के चादर बैठा तू ही, ताही राम नज़र न आवे ।
फैंक परे चादर जो ऊपर, पावे राम जो अन्दर तेरे ॥
है माया मन तू भरमाया, माया के अन्दर है आया ।
रहा पुकारत राम कहाँ है, माया कारण पकड़ न आवे ॥
माया तेरा रूप नहीं है, तुझ से माया सदा नियारी ।
पर तू माया रूप हो बैठा, राम हो कैसे संमुख तेरे ॥
तीर्थ शिवोम् है भोले मनवा, चाहे पाना राम को अन्दर ।
ममता छोड़, झटक दे माया, पाए राम को अभिमुख तेरे ॥

(६५) आनन्द

राग - सोरठ ताल - धुमाली

भय भागा, पाओ सिर रखकर, धन्य मेरे गिरधारी ।
निर्भय मोहे कर दीनों है, जय हो तेरी हे बनवारी ॥
अब न छोडूं चरण तिहारे, न छोडूं दर तेरा ।
अन्तर मोरे किया उजाला, राखनहार मुरारी ॥
चहूं दिशाएँ भयीं प्रकाशित, तम न ठहर सकत है ।
अन्तर तुम ही बाहर तुम ही, ऐसे प्रकट बिहारी ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु गिरधारी, रहूं समाई तो में ।
जगत बेचारा रह गया देखत, चरणी मस्त मुरारी ॥

(६६) उद्बोधन

राग - आसावरी ताल - केहरवा

दीन-हीन जन दुखी विराजे, चरण तहां ही तेरे ।
गर्व मेरे मन का हर लीनो, लागू चरण ही तेरे ॥
नमन करूं मन गर्व ही राखूं, पहुँच न तुम पह पाऊं ।
राग-त्याग, अनुराग भरो मन, लागी प्रीत चरण ही तेरे ॥
धारण चरण हृदय न राखूं, नाहीं झुकूं तनिक भी ।
जो माथा चरणों पर राखूं, मेरे हृदय चरण ही तेरे ॥
मन घमण्ड सिर ऊंचा राखूं, ऊंचे नयना मोरे ।
तेरी किरपा ही सिर नीचा, जावे झुके चरण ही तेरे ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु गिरधारी, सिर कटवाना मैं चाहूं ।
कटे सिर ही निर्मल मनवा, मनवा ऐसा चरण ही तेरे ॥

(६७) प्रेम

राग - सावेरी ताल - भजनी ठेका

मन से सेवा, तन से सेवा, सभी व्योहार राम की सेवा ।
साधन सेवा, सिमरन सेवा, सारा जीवन राम की सेवा ॥
सेवा लीन सदा जन ऐसा, प्रेम हो परगट प्रभु चरण में ।
प्रेम बिना न होती सेवा, प्रेम से कर लो राम की सेवा ॥
जग बंधन बाधा न देवत, जो जन प्रेमी सेवक होवे ।
जग यह सारा राम की लीला, जानो लीला राम की सेवा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, मो पर किरपा सदा हो तेरी ।
सिमरूं राम, चरण की सेवा, भक्ति फल है राम की सेवा ॥

(६८) प्रेम

राग - छायानट ताल - केहरवा

प्रेम का पाना, प्रेम का करना, कठिन बहुत है, कठिन बहुत है ।
सीस दिए बिन मिलत है नाहीं, सीस का देना, कठिन बहुत है ॥
जग के सुख-दुख, आशा तृष्णा, सब ही अर्पण प्रभु चरण में।
जग बैराग सरल है नाहीं, जगत हटाना कठिन बहुत है ॥
जब लौं हिरदय अगन जले न, प्रेम उभरता अन्तर नाहीं ।
विरह बिन जलती न अगनी, हृदय जलाना कठिन बहुत है ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, अगन- प्रेम अन्तर जल जावे ।
कृपा बिना यह होत नहीं है, किरपा पाना कठिन बहुत है ॥

(६९) उद्बोधन

राग - देसकार ताल - केहरवा

मन्द-बुद्धि हरि नाम न लेवे ।
पड़ा रहे जग के दुख सुख ही, पर हरि चरण कभौं न सेवे ॥
करे भजन कब भी नाहीं, कितना दुख हो कैसी चिन्ता ।
जग से करत सदा ही आशा, हरि चरण चित्त कभौं न देवे ॥
वेश बनाए, स्वांग रचाये, भान्ति भान्ति के कर्म कमाए ।
लागा रहे जगत में ऐसा, राम भरोसा कभौं न लेवे ॥
तीर्थ शिवोम् या मन्द-मति का, जीवन विरथा कलपत जावे।
दुखी होए, दुख देत जगत को, नाव सदा भव में ही खेवे ॥

(७०) उद्बोधन

राग -सोहनी ताल - त्रिताल

सार-मति यह ही मेरे भाई ।
गर्व तजे, हरि भजन करे जो, मन विकार न आई ॥
सबका मित्र न बैरी कोई, प्रेम सभी जीवों से ।
राग-द्वेष से काम न कोई, करुणा हृदय बढ़ाई ॥
सभी जगत में राम समाया, अपना कौन पराया ।
मैं का भाव नहीं अन्तर में, दूर राम नियराई मैं ॥
तीर्थ शिवोम् जो ऐसा मनवा, दुख न पावे जग में।
तृष्णा-ममता, माया सब ही, छोड़े चंचलताई ॥
आ गिरा हूं, आ पड़ा हूँ, दर पह तेरे आ पड़ा ।
दूसरा दर है न दीखे, दर पह तेरे आ खड़ा ॥
मिलना दर मुश्किल बहुत है,तेरी रहमत से मिला ।
मुझ में ताकत है कहां जो, दर पह तेरे आ खड़ा ॥

(७१) वन्दना

राग - मीरा मल्हार ताल - भजनी

वेल कब होगी प्रभु, गुणगान तेरा मैं करूं।
छोड़कर जग का बखेड़ा, ध्यान चरणों में धरूं॥
हैं वृथा सब काम धंधे, छोड़कर इक भजन को।
है भजन ही वह उपाय, नित्य सेवन मैं करूं॥
कर कृपा ऐसी प्रभु की, रत् सदा ही भजन में।
तार यह टूटे कभी न, मैं जिऊं या मैं मरूं॥
तीर्थ ऐ शिवोम् प्रभुवर, मैं सदा सेवक रहूं।
सेवा बिन न काम दूजा, चरण देखा मैं करूं॥

(७२) मन

राग - मांड ताल - केहरवा

जा मन आपा ऊभरे, लागा दीखन जग तभी।
आपा जा मन वीनसे, लागा विनसन जग तभी॥
जीव भाव जागे तभी, उभरत मनो-विकार।
जीव भाव जा में मरे, मन विकार जावे तभी॥
माया अंधा जीव जब, उलझत जग में जाए।
माया तज परकाशड़ा, छूटत है जग से तभी॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु मेरे, दूर खड़े क्यों जाय।
अन्तर देखौं तोहे जब, जाए मन पीड़ा तभी॥

(७३) प्रेम

राग- मिश्र पीलू ताल -केहरवा

फल कारण तू करे है सेवा, यह तो सेवा नाहीं।
सेवा तो बस सेवा कारण, फल की आशा नाहीं॥
सेवा करि करि जीवन काटें, सिर में खेह पड़त है।
फिर भी वह संतुष्ट इसी में, सरल यह मारग नाहीं॥
सेवक तो बस करत है सेवा, प्रभु की, जन-जन की भी।
सेवा कर्म छूट न जावे, दूजा भय को नाहीं॥
कठिन बहुत है सेवा करना, गर्व को चोट पड़त है।
सेवक तो बस लगा ही रहता, उसे प्रशंसा नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् कठिन यह मारग, कठिन है सेवा करना।
मन को पड़त है मारन जारन, पर मन निर्मल जाहीं॥

(७४) गुरुदेव

राग- रेवा ताल- धुमाली

अन्तर गगन गुरु परकाशित।
माथे मेरे हाथ जो राखा, हुआ त्रिलोक प्रकाशित॥
धन्य हुआ, गुरु किरपा कीनी, अगम अपार मिलाया।
मन भ्रम तन सगला छितराया, अन्तर हुआ प्रकाशित॥
गुरु दयाला किरपा कीनी, लियो लगाये कण्ठा।
दूर अंधारा हुआ सभी ही, देखत जहाँ प्रकाशित॥
तीर्थ शिवोम् जहाज पह, अपने लिये बैठाए मोहे।
छूटत पाछे तम-विस्तारा, जावत होत प्रकाशित॥

(७५) आनन्द

राग - काफी ताल - केहरवा

मन की मौज आनन्द मनाओ, क्यों संकल्प कमाओ।
मन की मौज आनन्द घना है, क्यों विरथा पछताओ॥
मन की मौज करत जो भजना, सुखी वही जन होता।
जग की चिन्ता, दुख का कारण, क्यों जीवन तरसाओ॥
ज्ञान तरंगित, बाढ़ प्रेम की, ताही सुख आनन्दा।
यह आनन्द क्यों छोड़त भैया, जीवन सुखी बनाओ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो मन मौजी, मन की मौज परम सुख।
नहीं फसत है जग चिन्तन में, काहे कीचड़ खाओ॥

(७६) पश्चाताप्

राग -जौनपुरी ताल- त्रिताल

मन की आश रहीं मन माहीं।
न हरि सेव, भजन ही कीना, प्रीत-हरि मन नाहीं॥
जगत विषय ही बीता जीवन, भोग विलास ही लागा।
मिथ्या जग, मिथ्या जग तृष्णा, राह प्रभु की नाहीं॥
भटकत फिरा, न थाका अजहूं, इन्द्रिय अब लौं भूखी।
रहत विषय ही धावत धावत, मन संतोष है नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, तुम दीनन रखवारे।
अब तो टेर सुनो हरि मेरी, दूजो जानत नाहीं॥

(७७) आनन्द

राग - भोपालीतोड़ी ताल - केहरवा

प्रेम के जल में मनुआ भीगा, रहत सदा आनन्दित ।
ज्यों ज्यों जल है बाढ़त जाए, होवत प्रेम तरंगित ॥
प्रेम का ऐसा वृक्ष लगा मन, बढ़त बढ़त ही जाए ।
शाखा सभी दिशाएँ फैली, हुआ सभी आनन्दित ॥
चढ़ा प्रेम का रंग है ऐसा, दूर सभी भ्रम माया ।
राग-द्वेष से छूटा पीछा, आनन्दित, आनन्दित ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, प्रेम बाढ़ मन आई ।
तुमरे बिन न सूझत है कुछ, मनवा भया आनन्दित ॥

(७८) मन

राग- रामकली ताल - केहरवा

मान की तान नहीं मैं त्यागत ।
मान ही डूबत जात रहा मैं, हरि चरण मैं नाहीं लागत ॥
अंध बना, मदहोश बना मैं, माया फेर रहा लिपटाना ।
अन्त वेल जब आई सिर पर, लगा नीन्द से ताही जागत ॥
पर अब कुछ सूझे नहीं मारग, नाहीं दीखत कोई उपाय ।
रहत भटकता नाईं कूकर, हुआ गुरु अनुराग है जाग्रत ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, अब तो बीती जाय रही है ।
अब क्या होगा, कैसे होगा, मैं तो कुछ भी नाहीं जानत ॥

(७९) उद्बोधन

राग- पीलू ताल - केहरवा

न कोई से बैर करो तुम, नहीं बनाओ मित्र भी कोई।
राग-द्वेष में उलझे जो तुम, समझो दुख ही दुख है होई॥
राग-द्वेष दोनों दुखकारक, सुख तो मिलत कभी न।
अपने छोड़े, मिले विरोधी, दुख ही मन को होई॥
राम समाया सब जीवों में, कौन पराया अपना।
मेरा तेरा भाव जो मनहिं, दुख संताप ही होई॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, लगा रहूँ चरणी ही।
मन न जावे ओर जगत के, जग तो फिसलन होई॥

(८०) उद्बोधन

राग -मुलतानी ताल - केहरवा

जो तू भजन करे नहीं बन्दे, जनम अकारथ जात तेरा।
लेय समझ यह मन के माहीं, विरथा अवसर जात तेरा॥
जप तप तीरथ नेम करे तू, मन तो काबू है नाहीं।
निष्फल किया कराया सब ही, निष्फल जतन है जात तेरा॥
कलियुग केवल नाम ही तारे, दान धर्म कुछ भी कर लो।
नाम सहारा, नाम किनारा, नाम ही राखनहार तेरा॥
तीर्थ शिवोम् समझ ले बन्दे, नाम ही पार कराए जो।
चेतन नाम, पार भव सागर, मेटे नाम ही भव तेरा॥

(८१) शुद्ध मन

राम -मिश्र खमाज ताल - केहरवा

जा मन हो आतम परकाशित, ता मन अंध्यारा न होई।
ता मन रहत सदा आनन्दित, तम ता मन अधिकार न होई॥
जो सुख चाहो अपने मनहिं, करो प्रकाशित अन्तर ज्ञाना।
तो ही छूटे पिण्ड जगत का, बंधन मुक्त जीव तब होई॥
जग में छाया तम ही तम है, दीखत चेतन तनिक कहीं न।
जब तक मन अन्दर न झांको, परगट चेतन कहीं न होई॥
तीर्थ शिवोम् करूँ मैं कैसे, जो हो मन आतम परकाशित।
प्रभु कृपा न, मन उजियारा, आतम लाभ भी नाहीं होई॥

(८२) शुद्ध मन

राग - भैरव ताल - केहरवा

हरि सिमरन जा मनहिं उभरे, बिसरत नाहीं कभी नहीं।
प्रीत जगे जा मन के माहीं, जगत विषय फिर कभी नहीं॥
हिरदय धारो ध्यान हरि का, सगले बंधन जाते जारे।
अनहद नाद प्रकट परकाशा, अंधकार फिर कभी नहीं॥
जड़ चेतन की ग्रन्थि मन में, पड़ी युगों युगों से ही।
हो विलीन नाम परसांदा, आवत न फिर कभी नहीं॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु रघुवीरा, नाम अमोलक मो दीना।
सिमरूं नाम रहूं आनन्दा, दुख व्यापे न कभी नहीं॥

(८३) आनन्द

राग- सूहा ताल- केहरवा

खिला गगन में पुष्प, कोई भी देख न पावे।
महकत रहे सुगंध, कोई भी सूंघ न पावे॥
अन्तर गगना, पुष्प है अन्दर, अन्तर महक समाई।
अन्तर ही फुलवाड़ी सुन्दर, कोई न अनुभव पावे॥
गुरु कृपा बिन कोई मनवा, गगन पुष्प न जानत।
वर्षा बिन दृष्टि न अन्तर, किरपा प्रीत बढ़ावे॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, शरणाई मैं आया।
थका जगत में भोग भोग के, अब मनवा सुख पावे॥

(८४) ज्ञान (आनन्द)

राग -सिंदूरा ताल- भजनी ठेका

ज्ञानी की पहचान यही है, कर्म करे पर रहे नियारा।
होत वासना कोऊ नाहीं, एक प्रभु नित हिरदय धारा॥
काचा जगत महल शीशे का, या में दीखत काऊ न सारा।
राम एक हरि भक्तन प्यारा, जा का कोई आर न पारा॥
झूठा जगत, झूठ सब कर्मन, ज्ञानी उलझत इनमें नाहीं।
जग में राम समाया देखत, सब में व्यापक सबसे न्यारा॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, ज्ञानी रूप तेरा ही देखूं।
कर्ता, हर्ता, भर्ता दीखे, सब में रहे, सबन से न्यारा॥

(८५) आनन्द

राग- दरबारी ताल - केहरवा

नाद श्रवण अन्तर प्रकट, मनवा लीन भया है।
डूबत जात रहा ताही में, छूटत जगत रह्या है॥
वंशी तान मनोहर आवे, घुंघरू छन छन बाजे।
ढोल ढमाके होत निरन्तर, मनवा सुनत रह्या है॥
न कोई गावनहारा बैठा, नहीं बजावनहारा।
राग-रागिनी मधुर सुहानी, अजब यह होई रह्या है॥
कैसी लीला प्रभु है तेरी, मनवा मस्त बनो है।
जगत पसारा सगला छूटा, आनन्द होई रह्या है॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु गुरुदेवा, जय हो तुमरी जय हो।
कैसा मन हर लीना मोरा, उन्मन होय रह्या है॥

(८६) विविध

राग - दुर्गा ताल - केहरवा

सरदी लागे, गरमी लागे, देह से सब व्याधिन माहीं।
आशा तृष्णा देह के कारण, देह नहीं तो कुछ भी नाहीं॥
खाटा, मीठा, कड़वा लागे, सुन्दर रूप कुरूप बनावे।
मीठी कड़वी वाणी बोले, देह नहीं तो कुछ भी नाहीं॥
मौन बने न बोले वाणी, देही बात न तनिक बनावे।
सुख भोगे, दुख पावे देहा, देह नहीं तो कुछ भी नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् जो आश निराशा, देह का ही सब खेल है।
प्यारे छूटा देह गया संसारा, देह नहीं तो कुछ भी नाहीं॥

(८७) विविध

राग- काफी ताल- केहरवा

उच्च शिखिर पर जो चढ़े, दीपक लेवे हाथ ।
मारग सीधा सामने, पीय को पावे साथ ॥
कृपा बिना न चढ़ सके, कृपा न दीपक हाथ ।
कृपा मिलाए मेल सब, कृपा जो होवे साथ ॥
उच्च शिखिर पर जो चढ़े, देखे शिखिर अनेक ।
एक एक कर चढ़ चले, गुरु कृपा जो साथ ॥
चढ़ता जाए दीप से, दीप में दीप समाय ।
गर्व छूट जावत सभी, मिले जो प्रीतम साथ ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु मेरे, मैं पापी अंजान ।
मारग सुखकर सुलभ सब, कृपा जो होवे साथ ॥

(८८) उद्बोधन

राग -मिश्र पीलू ताल- केहरवा

सीम- असीम को लांघकर, पार जो पहुँचे सूर ।
गाड़ पताका शिखिर पर, पा जाए प्रभु नूर ॥
नूर चंद सूरज वहाँ, होवत न दिन रैन ।
न दूजा दीखे कहीं, आपन में भरपूर ॥
को नहीं जाने शिखिर वह, न कुछ साधे जाय ।
एक अकेला सूरमा, बाकी सबको दूर ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु मेरे, तू सर्वज्ञ अनन्त ।
चाहे तू वह ही चढ़े, नहीं जगत के पूर ॥

(८९) वेदान्त

राग - कल्याण ताल - केहरवा

जल में पैदा होत भंवर है, जलहिं वापिस जात समाय।
ऐसे जग प्रकटे मिट जाए, जा से उपजे ताही समाय॥
जीव न समझे भेद प्रभु का, जग में जात रहा लिपटाए।
गर्व करे, मिथ्या आचारा, पर न पकड़ सत्य को पाए॥
देखत जग को चेतन नाही, ऐसी प्रभु माया फैलाई।
जल बिन जल में गोते खाय, करत जतन पर निकल न पाए॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु जी मोरे, माया अपनी आप समेटो।
मैं तो माया में ही उलझा, निकलत मो से जात न जाए॥

(९०) उद्बोधन

राग - देव गंधार ताल - दीपचन्दी

काहे रोए, कलपे, भागे, काहे दुख मनाए।
जैसा राम ने रच है राखा, घटित वही हो जाए॥
राम भरोसा, राम सहारा, करत नहीं तू काहे।
सिरजनहारा राम प्रभु हैं, उसी किए सब होए॥
काहे करत रहा चिन्ता तू, चिन्ता किए न कुछ भी।
होना जो है होत वही है, चिन्ता किए से न कुछ होए॥
तीर्थ शिवोम् तू भटकत काहे, दाता केवल राम प्रभु ही।
जो कुछ मिलना तुझको प्यारे, देवनहारा देत है जाय॥
बिरहा अगन जिया में लागी, धुआँ न बाहर निकसे।
लोगन को दीखत न अग्नि, बात करे न किससे॥

(९१) उद्बोधन

राग - तिलक कामोद ताल - केहरवा

कामी क्रोधी, लोभी, मोही, समझाओ पर समझत नाहीं।
बार बार जग ही को धावे, जगहिं पकड़ा छोड़त नाहीं॥
जब लौ मनवा बहिर्मुखी हो, तब लौ मनवा जगहिं जावे।
कितन डांटो, कितना मोड़ो, मन उपदेश वह आनत नाहीं॥
जां लौ अहम् फसा मन अन्दर, सब विकार वासा मन माहीं।
मन निर्मल न, समझे कैसे, धर्म-अधर्म वह जानत नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् हे भोले मनवा, काहे दुखी जगत उलझाना।
छोड़ सभी कुछ हरि भजन कर, भजन बिना सुख पावत नाहीं॥

(९२) उद्बोधन

राग - देसी ताल - केहरवा

अगन विषय की बुझ न पावे, विषय बढ़ावे विषय पिपासा।
जितना घी अग्नि के माहीं, उठती अगन, जलावत घासा॥
रहा बुझावत विषय भोग से, भोग पिपासा बढ़ती जाय।
भूला जीव न पाए मारग, जावत नहीं हरि के पासा॥
भोग लुभाने, भोग सुहाने, मोहित कर मन को हर लेवे।
भागत फिरे जगत के पाछे छोड़त नाहीं जग की आसा॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, मन को मैं समझाऊँ कैसे।
वह तो भोग विषय ही अटका, रहत करत भोगन की आसा॥

(९३) प्रेम

राग - शुद्ध कल्याण ताल- भजनी ठेका

राम ही केवल प्राण पियारा।
राम को छोड़ जगत को जाने, भटकत मारा मारा॥
राम के वारौ सकल जगत यह, और मान मर्यादा।
दीन जनन का राखनहारा, वह ही एक हमारा॥
राम ही हर घट अन्तर्यामी, घट घट वही बयापे।
जोगी जपी तपी थक हारे, पाया आर न पारा॥
तीर्थ शिवोम् हुआ मन निर्मल, दर्शन मन हर्षाया।
जगह जगह जिस खोजत हारा, सो अन्दर ही पाया॥

(९४) उद्बोधन

राग -आसावरी ताल - त्रिताल

उठा उठा घुँघट री सजनी, सजना तेरे सन्मुख है।
काहे लागी सुख संचय में, सकल दिखावा है सुख का।
सुख तो हरदम पास तेरे ही, रोम रोम पी सन्मुख है॥
अन्तर हिरदय, अन्तर गगना, जहां बसत पी संग तेरे।
तू देखत न तू झांकत न, पिया गगन सन्मुख है॥
तीर्थ शिवोम् वियोगिन सजनी, रोग वियोग का कर गहरा।
आए परगट तोहे मिलेंगे, पिया जो हरदम सन्मुख है॥

(९५) विरह

राग- शंकरा ताल -धुमाली

चैन न पावे छिन भी जियड़ा, कहूं किसे मैं अन्तर दुखड़ा ।
दे संदेशा भेजूं का को, दीखत नहीं पियारा मुखड़ा ॥
जागत रहूं नींद नहीं आवे, राह निहारत रहत पिया का ।
धड़के धिकधिक मोर कलेजा, लगा रहत है नित ही धड़का ॥
पीव मिले न पाती पाई, तड़पत रहत हूँ निसदिन अंसुअन ।
यह जीना है कैसा जीना, जीय प्रेम हरदम है भड़का ॥
जा पी मोहे कियो है घायल, वह ही या की औषध भी है ।
यह औषध बिन पाए कबहूँ, दूर नहीं हो मन का धड़का ॥
तीर्थ शिवोम् हे प्यारे सजना, कबहूं कृपा करोगे आए ।
उमरिया तो अब जावत बीतत, लगा यही है मन में खटका ॥

(९६) विनय

राग- मियां की तोड़ी ताल -एक ताल

मैं भिखारी दर तेरे का, मांगता तुम से प्रभु ।
दर्स की किरपा करो जी, यह विनय तुम से प्रभु ॥
तुम हो दाता हो दयाला, कष्टहारक रूप तेरा ।
मोरी विपदा कब हरोगे, कहना यह तुम से प्रभु ॥
जग में तो पल पल दुखी हूं, मोह अग्नि दहकती ।
आ बुझा अग्नि देयो यह, मांग यह तुम से प्रभु ॥
विरह मन का दूर कर के, प्रेम का दीपक जलाओ ।
दर्श तेरा मन सुखी हो, चाहती तुम से प्रभु ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् साजन, आओ अब आ भी मिलो ।
तुम बिना सूना जंगत यह, क्या छुपा तुम से प्रभु ॥

(९७) विरह

राग - मालगुंजी ताल - भजनी ठेका

पीड़ा लागी जा मन माही, जगे विरह है उसी हृदय में।
जा हिरदय विरह परकाशित, तड़प मिलन की उसी हृदय में॥
जा हिरदय पीड़ा न लागी, वह क्या जाने प्रेम अगन को।
वह तो डूबा विषय माही, जगत समाया उसी हृदय में॥
प्रेम की पीड़ा देन प्रभु की, पीड़ जगाए दर्श दिखाए।
प्रेम से हिरदय भर जाता जब, प्रकट प्रभु हो उसी हृदय में॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, जगत छुड़ाओ पीर जगाओ।
पीड़ा मिलन का साधन तेरा, दिख जाते तुम उसी हृदय में॥

(९८) मन

राग- भूप ताल – केहरवा

घेरन का जो करत हूँ मन का, तो वह पकड़ में आवत नाहीं।
जो मैं कही लगावत उसको, वहाँ कभी वह लागत नाहीं॥
जो मैं समझावत हूँ मन को, समझ में उस की आवत नाहीं।
दे परबोध थका हूँ मन को, वह कुछ भी तो धारत नाहीं॥
जो करना सो करत है नाही, नहीं करना सो करता।
ऐसी उलटी भयी मती ता, सूधो तरफ वह आवत नाही॥
साधुसंग गुरु से भागे, विषयन सो लिपटाए।
न माने कुछ भी काहू का, बुरा करन डर लागत नाहीं॥
तीर्थ शिवोम् मेरे ऐ मनवा, कैसे साधूं, क्योंकर रोकूँ।
जाए कहाँ, कहाँ कब बैठे, गति समझ में आवत नाहीं॥

(९९) शुद्ध-अशुद्ध मन

राग- सारंग ताल- धुमाली

जो मनवा बन जाए निर्मल, उससे बड़ा सपूत न कोई।
जो मन रहे मलीन सदा ही, उससे बड़ा कपूत न कोई॥
जो मन जग में जाए भटका, करत अनर्थ अधर्म ही रहता।
जो मन लागे हरि चरन में, दूजा देव दूत न कोई॥
जब मनवा आवे भ्रम माहीं, भ्रम ही भासित सकल जगत में।
जग कैसा पर दीखे कैसा, उससे बढ़कर लूट न कोई॥
बना विभक्त जो मनवा जग में, नाना रूप दिखाई देते।
एक को पकड़े, दूजे छोड़े, इससे बढ़ कर फूट न कोई॥
तीर्थ शिवोम् हे मेरे मनवा, सूधे चालो नाम कमाओ।
जग भोगन में रमा तू काहे, इससे बढ़कर दुख न कोई॥

(१००) मन

राग - भैरवी ताल - केहरवा

अन्दर मैल कुचैल है तेरे, बाहर साबुन मल मल धोवे।
हिरदय माहीं तो तम छाया, बाहर बाहर रूप बनावे॥
निर्मल मनवा, मारग पी का, बात यह तोहे समझ न आवे।
करे नियंत्रित चंचल मन को, मन में ही साजन पा जावे॥
कृपा बिना न परगट भेदा, कितना साधु संग कमावे।
वर्षा कृपा होए जा छिन में, पल में दर्शन लाभ-मिलावे॥
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, पकड़ पकड़ सिर रोवें क्यों।
बीत गई सो बीत गई है, बाकी रही भजन मन लावे॥

(१०१) उद्बोधन

राग- मिश्र भैरवी ताल - धुमाली

बोलने का ढब हो आता, बोलना तब चाहिए ।
कैसा, क्या है बोलना, यह भी तो आना चाहिए ॥
जिसके पल्ले गुण नहीं यह, चुप ही रहना है भला ।
तोल पहले मन में लो, फिर बोलना तब चाहिए ॥
कोई मेंढक की तरह टर् टर् करे हर वक्त है ।
वेल देखें, वह न अवसर, देखना यह चाहिये ॥
मधुर मीठा हित में दूजे, वचन यह ही है वचन ।
बन विवेकी बोलना ही, बोलना तब चाहिए ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् मूरख, चुप तू रहता ही नहीं ।
जब जरूरत बोलने की, बोलना तब चाहिए ॥

(१०२) उद्बोधन

राग -मिश्र आभोगी ताल - कव्वाली ठेका

कोई वचन करत है मीठे, मन प्रसन्न हो जाता है ।
कोई वचन करें तो कड़वे, झुलस कलेजा जाता है ॥
कोई बात करत है ऐसी, जैसे मुंह से फूल झड़े ।
कोई उगले मुंह से अग्नि, जलत हृदय ही जाता है ॥
कर किरपा प्रभु वाणी दीनी, मीठा बोलन, सत्य वचन को ।
जो वाणी दुख देवे औरन, अवसर निष्फल जाता है ॥
निन्दा चुगली राग द्वेष में, मन वाणी दूषित होते ।
जो रहते इनसे हैं बचकर, जन्म सफलता पाता है ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो हे मानव, करने निर्मल मन आया ।
शुद्ध वचन, मन निर्मल होवे, जीवन का फल पाता है ॥

(१०३) उद्बोधन

राग - बागेश्री ताल - केहरवा

भक्त लिए धन धूली जैसा, सब संसार असारा ।
एक नाम ही तत्त्व जो साचा, दीखत सकल असारा ॥
है मोहित न धन मर्यादा, न लोभी वह यश का है ।
जगत विषय सब तुच्छ समाना, करता नाम उचारा ॥
नागिन दीखत नारी वा को, सुविधाएं सब फीकी ।
एक प्रभु ही रंगा रहे वह, ता ही करत विचारा ॥
आप्तकाम वह निर्मल मनवा, साधु संग पियारा ।
जग में रह जग से न्यारा, न कोई बांधनहारा ॥
तीर्थ शिवोम् भक्त जो ऐसा, ता बलिहारी जाऊं ।
पार होत वह भव सागर से, पार करत जन सारा ॥

(१०४) उद्बोधन

राग- मिश्र काफी, ताल -केहरवा

मरना मीठा उसको लागे, जा को मर कर जनम न होवे ।
जा को जनम पुनि हो लेना, वह तो मरने से घबरावे ॥
जितना मोह जगत में होवे, उतना दुख हो, छोड़त जग को ।
जीव बने जितना निर्मोही, उतना सुख से जग को खोवे ॥
प्रभु प्रेम जितना मन माही, उतना जग से हो वैरागा ।
जितना प्रेम जगत में होवे, उतना त्यागत जग को रोवे ॥
यह सब मन का खेल है प्यारे, जैसा मन वैसा फल पावे ।
जितनी मन में मैल अधिक हो, उतना ही मन दुखिया होवे ॥
तीर्थ शिवोम् हे मनवा प्यारे, छोड़ो मोह, प्रेम प्रभु चरणी ।
तब मरना दुखदायक नाही, हर्षित मन हो जग को खोवे ॥
जग में जो कुछ भी है दीखे, माया सकल पसारा ।
दीखे पर आधार नहीं है, सगला विनसनहारा ॥

(१०५) उद्बोधन

राग- जैजैवन्ती ताल - केहरवा

दीखत जग उसमें ही उलझे, मुडत प्रभु की ओर नहीं।
सामने तेरे ही वह खेले, वह तो कोई चोर नहीं॥
चोर बनाया तू ने उसको, जो बुरका ओढ़े बैठा।
आँख कान मुंह में जो खेलत, दूजा कोई होर नहीं॥
सारे जग ही एक समष्टि, बना तू ही टुकड़े टुकड़े।
दृष्टि बदले पीव निहारे, वह पाखण्डी घोर नहीं॥
मनहिं छलके प्रेम का सागर, मन ही ज्ञान भरा वा का।
मन के अन्दर सेज पिया की, मन की छोड़े डोर नहीं॥
तीर्थ शिवोम् यही विश्वासा, अन्तर मेरे जमा हुआ।
इक दिन पाऊं प्रभु पिया को, कृपा बिना है ठौर नहीं॥

(१०६) उद्बोधन

राग- धनाश्री ताल - त्रिताल

साचा एको है प्रभु मोरा, जाणे सद्गुरु मोरा।
जग मिथ्या साचा क्या जाने, उलझा मोरा तोरा॥
निश्चल सेवा करे प्रभु की, वह ही भेद पछाने।
उसको प्रकट प्रभु हो मोरा, जावे मोरा तोरा॥
मोरा प्रभु लिया है मैंने, किस का क्या है जाए।
जिसका, जिसको, मिला उसीको, भागा मोरा तोरा॥
साच मिले पाखण्ड से नाहीं, साच से मिलता साचा।
साचे साच कमाययां, मिथ्या मोरा तोरा॥
तीर्थ शिवोम् मिले है प्रभुजी, जो साचा जन होए।
साच दिखावे साचे को वह, साच न मोरा तोरा॥

(१०७) विविध

राग- सिन्ध भैरवी ताल -केहरवा

पाप पुन्न दोनों बंधन हैं, सेवा-कर्म कमा ले तू ।
सेवा से मन निर्मल होवे, सेवा ही मन ला ले तू ॥
पाप पुन्न दोऊ रस्ता रोकें, नरक स्वर्ग भटकाए रहें ।
कृष्ण शुक्ल से हो जा न्यारा, पाप कटे सुख पा ले तू ॥
जग ही सन्मुख पाप पुन्न के, दोनों रूप आसक्ति के ।
इन दोनों का संग त्यागे, मन उजियारा कर ले तू ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु जी मोरे, श्रेय प्रेम मैं न जानूं ।
प्रेम सदा चरणों में तेरे, अपना दास बना ले तू ॥

(१०८) अशुद्ध मन

राग - पटदीप ताल - खेमटा

साईं मोहे सिमरा राम न जावे ।
काम क्रोध मद लगे है पाछे, ताही है मन जाए ॥
खींचत मोहे जग के ताई, सिमरन देत करन न ।
छूटं इनसे, राम धिआऊं, मन को रहत भगाए ॥
साईं तू तो दीन दयाला, मूरत तू किरपा की ।
कृपा करे मन काबू आए, चंचलता छट जाए ॥
उच्च शिखिर पर महल तेरा है, मैं तो चढ़ न पाऊं ।
तुमरे बल ही चढ़त सकूं मैं, मुश्किल सहज बनाए ॥
तीर्थ शिवोम् हूं आया शरणी, मन में आस तेरी ही।
एक भरोसा एक सहारा, नैया पार कराए ॥

(१०९) वन्दना

राग -रागेश्री ताल - धुमाली

साहिब साईं ! मैं नीचन से नीच ।
गर्व बड़ा ही पाला मैंने, पर हूं मैं नाचीज ॥
ऐसी कृपा करो मेरे साहिब, गर्व तजूं मैं मन का ।
छोड़ मान अपमान सभी कुछ, जाए मन की खीज ॥
खाक से पैदा जीव सभी हैं, अन्त खाक मिल जाना ।
जा को ज्ञान कराओ यह तुम, कटे कर्म का बीज ॥
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरु मोरे, साईं रूप अनन्ता ।
मैं पापी दर खड़ा तुम्हारे, मांगत किरपा भीख ॥

(११०) उद्बोधन

राग- पीलू ताल - भजनी ठेका

कोई बतावे दूर पिया है, कोई कहे वह नेरे ।
का की बात नहीं मन भावे, नहीं दूर नहीं नेरे ॥
जो मन चीहने दूर प्रभु को, ता मन दूर ही रहता ।
जो मन देखत नेरे उसको, ता को हरदम नेरे ॥
जाना दूर पिया, मैं भटकी, कभी न आया नेरे ।
जब पी पाया नेरे अपने, रहा सदा ही नेरे ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु जी मोरे, छमा छमा मो करना ।
समझी दूर अभागिन तोहे, तुम तो सदा ही नेरे ॥

(१११) प्रेम

राग - मांड ताल - भजनी ठेका

प्रेम-प्रवाह बहाओ मन में, प्रेम-प्रवाह बहाओ।
छूटे तृष्णा, ममता, माया, अमृत कुण्ड दिखाओ॥
जैसा मनवा कृषक सदा ही, लगा रहत है खेत के माहीं।
ऐसा मनवा श्री चरणों में, गंगा प्रेम बहाओ॥
तुम तो समदृष्टि प्रभु मोरे, गुण-अवगुण न चीहनो।
हौं तो शरण तिहारी आया, बंधन मोह छुड़ाओ॥
नाचत गावत भक्त तिहारे, तहां तिहारा वासा।
पार करत हो दीन जनों को, दुविधा विपद मिटाओ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, नाम सिमर मन पुलकित।
हौं तो जानौं तुमको ही बस, मन भ्रम सकल हटाओ॥

(११२) विनय

राग - कलावती ताल - केहरवा

बड़त जाए डूबत जाए, आओ नाव बचाओ।
किसे पुकारूं मैं दुखियारी, आओ पार कराओ॥
आशा तृष्णा लहरें भारी, वायु क्रोध हिलाए।
लोभ मोह तूफान उठत हैं, जल्दी हाथ बढ़ाओ॥
कपट दम्भ की पवन बहत है, वा में नाव है अटकी।
काढ़नहार न दीखे कोई, आओ पार लंघाओ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, तुम समर्थ बलकारी।
पार करावनहार तुम्हीं हो, पीरा आए मिटाओ॥

(११३) वन्दना

राग -बिलावल ताल - केहरवा

साहिब साईं ! अजब है लीला तेरी ।
गति कही कछु जात है नाहीं, छोटी बुद्धि मेरी ॥
सारा जग है नाच नचाय, बिना लगाए डोरी ।
अवगुण दूर करो दीनन के, बिना लगाए देरी ॥
सब कहते हैं मेरा तेरा, सब माया भरमाया ।
जा पर किरपा तेरी होवे, मेरी रहे न तेरी ॥
माया ममता काटे डारे, क्रोध को मार भगाए ।
अवगुण सब ही जावें मन सो, सांई सुध लो मेरी ॥
तीर्थ शिवोम् पड़ा है चरणी, मन तन अर्पन तेरे ।
भव बंधन में जकड़ रहा हूँ, हर लो दुविधा मेरी ॥

(११४) प्रेम

राग - धानी ताल - भजनी ठेका

परदेसी मन आय गयो है, जाग भया अनुरागा ।
तन मन रोम रोम हर्षाया, भाग हमारा जागा ॥
पी ही देखत सपने माहीं, पी ही जाग्रत दीखे ।
पी मन हरदम रहत समाया, पी ही पी मन जागा ॥
पल भर भी मन पी बिसराए, व्याकुल मन हुई जावे ।
पीव निरन्तर सन्मुख मोरे, ऐसा भाव है जागा ॥
तीर्थ शिवोम् पिया जी मोरे, हिरदयवास रखीजो ।
रहूं निहारत हर पल तोहे, चरण-कमल मन लागा ॥

(११५) प्रेम

राग - अल्हैया बिलावल ताल - त्रिताल

होरी ! कोई ऐसो प्रेमी होवे ।
सीस काट प्रभु अर्पण कर दे, सकल समर्पित होवे ॥
जगत-वासना, जगत-कामना, मन में हो न कोई ।
साजन सो ही लौ लगी हो, न दुविधा मन होवे ॥
लिपटत रहे प्रभु चरणों में, पल-भर एक न छोड़े ।
प्रेम-प्रवाह रहे बहता ही, हिरदय प्रीतम होवे ॥
जीव जीव पीव ही देखत, ऐसी वा की दृष्टि ।
कठिन बहुत उस मोड़ पर आना, पहुँचे सूर जो होवे ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, मैं तो निपट अजाना ।
भेद प्रेम का मैं क्या जानूं, कृपा करो तो होवे ॥

(११६) मिलन

राग - तिलवा ताल - केहरवा

पिया सेज का दर्शन पाया, मनवा अपना खूब छकाया ।
पीव डगरिया देखी भाली, जात आनन्द है नहीं समाया ॥
सेज पिया का अजब आनन्दा, जिन पाया जन सो ही जाना ।
मैंने लूटा खूब है अनुभव, मुख सों जावत नहीं बताया ॥
शब्द ही मारग सेज पिया को, मिलत है गुरु कृपा सो ।
जिन पाई गुरु की किरपा यह, फिर उसने सुख सेज का पाया ॥
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरुदेवा, एक भयी साजन से मिलकर ।
तू जो कृपा करत न मोहे, आनन्द अनुभव कभी न पाया ॥

(११७) विनय

राग - यमन ताल - केहरवा

साईं मो को एक सहारा तुमरा ।
वश मोरे तो है कछु नाहीं, एक भरोसा केवल तुमरा ।
मैं अजान बल बुद्धि नाही, कर न सकूं तनिक वीचारा ॥
बूढ़त तारे बहु जन तूने, मो का करत न क्यों निस्तारा ।
शरणी मैं भी आन पड़ा हूँ, सेवक एक हूँ मैं भी तुमरा ॥
साहिब साईं, मालिक तुम हो, तुम्हीं दया के सागर ।
बख्श देयो पापन को मोरे, डूबत बेड़ा पार हो हमरा ॥
तीर्थ शिवोम् शरण हूँ आया, चरण तुम्हारे पकड़े ।
हे समर्थ ! हे साईं सद्गुरु, केवल बल है मोहे तुमरा ॥

(११८) विनय

राग - चारुकेशी ताल - धुमाली

हमरी ओर नहीं क्यों देखत ।
हम तो देखत रहें तुम्हीं को, दूजी ओर तुम्हीं क्यों देखत ॥
और न आश अनेकों औरन, हमको आश तेरी ही ।
ऐसा हृदय कठोर किया तुम, एक भी बार नहीं क्यों देखत ॥
गगन बिछाऊं सेज तुम्हारी, पुष्प अति मनमोहक ।
आवत पर तुम कबहूं नाही, आए नहीं क्यों मोहे देखत ॥
तीर्थ शिवोम् पड़ी हूं, प्यासी, आओ मोरी प्यास बुझाओ ।
तुम तो आए झांकत भी न, पीरा हृदय नहीं क्यों देखत ॥

(११९) माया

राग - श्याम कल्याण ताल - भजनी ठेका

माया नारी, नटनी भारी, ठग लेवे जग ही को।
जोगी जती कोई न छोड़े, लेत फसाए सबको॥
हाव भाव सुन्दर है उसके, रूप मनोहर धारे।
मनवा पाछे लग है जावत, ना कह सकत न उसको॥
कहीं फसाए ममता माहीं, कहीं विवेक दिखाए।
कहीं दिखाए भोग जगत के, तरसत है मन उसको॥
जो भी बचना चाहे उससे, कसती उसे घनेरा।
छूटन देत किसे भी नाही, ज्ञानी ध्यानी सबको॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, अंध बना माया सो।
गोते खाऊं, डूबत जाऊं, पर छोडूं न उसको॥

(१२०) उद्बोधन

राग -मिश्र शिवरंजनी ताल - धुमाली

बन बन काहे भटकत भाई।
राम सदा ही साथ है तेरे, काहे मुँह छिपाई॥
प्रभु अलेपा संग समाया, पर मन संशय जागा।
भय विकार तज निर्मल मनवा, अन्तर में ही पाई॥
रोम रोम हरि रहा विराजत, दृष्टि बाहर जाई।
अन्तर खोजे राम समाया, घट ही पाओ भाई॥
तीर्थ शिवोम् जो देखे अन्दर, देखत वह रघुराई।
आपा चीहने बिना दिखे न, आपा जाए बड़ाई॥

(१२१) वन्दना

राग -भीमपलास ताल- केहरवा

साईं तुम सबन गुनन की खान ।
जा पर कृपावन्त हो प्यारा, देवत अमित गियान ॥
आपे भक्त, भक्ति भी आपे, आपे अलख लखावे ।
जा जन अपनी शरण में राखे, वह ही सुजन सुजान ॥
न टारे जो आवे शरणी, न बिसरे वह कबहूं ।
सुरती खैंच चढ़ावे गगनी, जोत में जोत मिलान ॥
साई साचा साहिब मेरा, साई देवनहारा ।
जो जन पड़त साई की शरणी, करता पार जहान ॥
तीर्थं शिवोम् हे साईं सतगुरु, तू दाता तू साचा ।
भव का पार करावनहारा, करता विनय अजान ॥

(१२२) मन

राग -भैरवी ताल - केहरवा

जो मन भजन राम है नाहीं, ता मन मरघट समझो जानो ।
जग तृष्णा की जलत अगन है, तखत बिना राजा ही जानो ॥
जा मन अन्दर दीप जले हैं, रहता सदा उजाला ।
दीपक नाहीं घोर अंधेरा, आतम राम कहाँ पहचानो ॥
सद्गुरु दिया जलाए दीपक, दूर भया अंध्यारा ।
सूझी बूझी लगन सबै ही, मन विकार सभी गत जानो ॥
तीर्थं शिवोम् भजन गुरुवर का, माया तृष्णा जारे।
सार-सार सब दीखन लागा, गया असारा सब ही जानो ॥

(१२३) विरह

राग - विलासखानी तोड़ी ताल - धुमाली

सेज बिछाए राह निहारत, कब पी मोरा आवे ।
हौं तो दासी प्राण पिया की, गंगा प्रेम बहावे ॥

एक अकेली पड़ी सेजहिं, मनवा लागत नाहीं ।
पी आवे मो गले लगावे, मन की प्यास बुझावे ॥

अंग अंग मस्ती अलसाया, तड़पत हिरदय मोरा ।
आहट पाऊं, झुक झुक देखूं, पी मुखड़ा दिखलावे ॥

अब तो आओ सजना मोरे, रात है बीती जाय ।
निकल न जाए विरथा रैना जीय मोर अकुलाए ॥

तीर्थ शिवोम् प्रभु जी मोरे, कौन समय मुख देखौं ।
अबला कृपा करो हे साजन हृदय कृपा ललचावे ॥

(१२४) आनन्द

राग - जैजैवंती ताल - रूपक

जब भया मन मगन अन्दर, फिर वह गाए क्या भला ।
पा लिया अन्दर जो पाना, फिर वह पाए क्या भला ॥

ठहरता जो मन नहीं था, इक जगह इक ठौर पर ।
अब नहीं चंचल कहीं भी, फिर ठहराए क्या भला ॥

सेज अन्दर में बिछी जो, पाई अन्तर में ही मैं ।
साथ सोई सेज पी के, और सोऊं क्या भला ॥

तीर्थ ऐ शिव ओम् सद्गुरू, है कृपा मुझ पर हुई ।
पाई किरपा जब गुरु की, और पाऊं क्या भला ॥

(१२५) विनय

राग - झिंझोटी ताल - धुमाली

सुनो ग़रीब नवाज़ अर्ज़ यह, विनती करत मैं हारी ।
पल पल पड़त है भारी मोहे, हूं मैं दुख की मारी ॥
तू स्वामी तू साहिब मेरा, तू है दीन दयाला ।
जात हूं डूबी भव जल माही, सुनत न कोई हमारी ॥
मैं कर जोडूं, पांव पड़त हूँ, दर्शन मोहे दीजो ।
दर्शन हों मन शीतल होए, आस एक बस रही तिहारी ॥
हे साहिब तेरी साहिबी, हो परगट मो दीन पर।
भव जल बेड़ा पार हो, यही अर्ज़ है चरन हमारी ॥
तीर्थ शिवोम् साहिबजी मोरे मैं तो हाथ बिकानी ।
करो कृपा, अपना लो मोहे, ठौर ठौर फिरत मैं हारी ॥

(१२६) उद्बोधन

राग- खमाज ताल - केहरवा

नशा चढ़ा मदिरा का ऐसा, हुआ प्रवेश गगन में ।
बिसरा संसारा जो दीखत, उड़ता रहा गगन में ॥
यह मदिरा भक्ति की मदिरा, पीयो और पिलाओ ।
छका रहे मस्ती में मनवा, देखत रंग गगन में ॥
इस मदिरा में देयो डुबोए, काम विकार सभी ही ।
रहे जगत, न मदिरा ही बस, बहती गंग गगन में ॥
पान करे मदिरा का जो भी, छूटे सकल पसारा ।
मुक्त बने, उन्मुक्त यह मनवा, मुक्त विहार गगन में ॥
तीर्थ शिवोम् पिलाओ मदिरा, भर भर प्यारा न्यारा ।
झूम उठो थिरके सब अंगवा, नाचत भाव गगन में ॥

(१२७) उद्बोधन

राग- भैरवी ताल - केहरवा

गहरे उतरो अन्दर अन्दर, गहरे अन्दर उतरो ।
कुतरो अन्दर अन्दर माया, अन्दर माया कुतरो ॥
दिल में पाओ, दिल में पाओ, सिरजनहार जगत का ।
अन्दर साईं, अन्दर साईं, देखो, पाओ, उतरो ॥
बात यह मानो बात हमारी, काहे भटको जग में।
अन्दर बैठा, अन्दर बैठा, अन्दर बैठा, उतरो ॥
तीर्थ शिवोम् साईं प्रभु मोरे, अन्दर झाकूँ पाऊँ।
अन्दर देखूं, अन्दर पेखूं, अन्दर दिल के उतरो ॥

(१२८) उद्बोधन

राग -यमन ताल - रूपक

जो प्रभु का हो के रहता, हो रहे उसका प्रभु ।
न मिले बातों से केवल, गर्व टूटे, तब प्रभु ॥
जागते को आ मिले वह सोया जो खोए प्रभु ।
जागते निर्मल बने मन, जागते मिलते प्रभु ॥
है वह बेअन्ता, अनन्ता, वास हर घट में करे ।
पर मिले, जो खटखटाए है, दया सागर प्रभु ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् तू न, कर गुमां न मान कर ।
मान में वह न मिले है, मान न मिलते प्रभु ॥

(१२९) उद्बोधन

राग- यमनी बिलावल ताल - भजनी ठेका

जब लौं जोबन धन है साथे, फिरत जगत है आगे पाछे ।
छूटे ज्यों ही साथ है इनका, न आगे न कोई पाछे ॥
सारा जगत ही स्वारथ लागा, तात मित्र अरू नारी भगिनी ।
छूटा स्वारथ हुए पराए, छोड़ के रिश्ते सारे नाते ॥
लेत हैं फेरत नयना अपने, कल तक थे जो लागे लपटे।
बात भी पूछे न अब कोई, अब तक थे जो गाते खाते ॥
पड़े विपत्ति जीव पह जब है, कोई न चाले साथ किसी के ।
छोड़त न थे साथ कभी जो, नजर कहीं अब नाहीं आते ॥
तीर्थ शिवोम् जगत यह ऐसा, टुकरा देखे, पूंछ हिलाए ।
आस करो न कोई जग से, वक्त पड़े तो मारे प्यासे ॥

(१३०) गुरुदेव

राग - पहाड़ी ताल - केहरवा

आ जाए साजन घर मेरे, करूं खोल दिल मैं मेहमानी ।
मन की सेज बिछाए चादर, पधराऊं अपना दिलजानी ॥
हिरदय खोल सुनाऊं बातां, छिपी कोई न नई पुरानी ।
करां सोई जो चाहे साजन, समझ बूझ अपना हितमानी ॥
बहुत दिनां में प्रीतम आयो, मन ललचाए सुनने बानी ।
उसकी सुनूं, सुनाऊं अपनी, मन में जो अनकही कहानी ॥
तीर्थ शिवोम् हे प्यारे सैंया, करो छमा जाने अंजानी ।
इक दूजे को भूल गए हम, नहीं तो हम थे चिर पहचानी ॥

(१३१) उद्बोधन

राग सरपरदा ताल - भजनी ठेका

मेरा तेरा करे तू काहे, न तेरा न मेरा है।
यह तो केवल मन-भ्रम छाया, करता मेरा तेरा है॥
चार पहर तरुवर पर डेरा, पंछी आकर किया बसेरा।
जागा गर्व बसेरा तरुवर, करता मेरा तेरा है॥
यह जग सिरजनहार बनाया, वह ही इसका है सुआमी।
तू तो मिथ्या गर्व में डूबा, करता मेरा तेरा है॥
इसे बुलाए, उसे भगाए, जीवन सुख दुख ही बीता।
मेरा तेरा सार न समझे, करता मेरा तेरा है॥
तीर्थ शिवोम् सुनो हे भाई, हम तुम तो जग छोड़न हारे।
एक प्रभु ही रहे जो बाकी, काहे मेरा तेरा है॥

(१३२) मन

राग गौड़- सारंग ताल - दादरा

मन बैठे जब मन ही माही, होत सुखी है तब ही मनवा।
जब लौं चंचल बना भटकता, होत दुखी है, तब ही मनवा॥
जब लौं जल परवाहित रहता, भंवर पड़त ही जल माहीं।
रुका प्रवाह गई चंचलता, थिरता धारण करत है मनवा॥
जीव न जाने सुख थिरता का, निश्चलता का, प्रेम लगन का।
भोगन को ही वह सुख माने, दुखी बना ही रहत है मनवा॥
मन के पाछे कब तक चालो, कब लौं जगत विषय में भटको।
अब तो छोड़ो जगत पिपासा, होय सुखी यह तेरा मनवा॥
तीर्थ शिवोम् सुनो विष भोगी, अमृत चाखे आतम पावे।
सुख आनन्द मनावे मनवा, मिथ्या जग से हटकर मनवा॥

(१३३) मन

राग -आसावरी ताल - त्रिताल

मनवा क्यों न जपे हरि नाम ।
सुत दारा धन अखुट खजाना, कोई न आवे काम ॥
सब जंग स्वारथ अपने लागा, संग चले नहीं दाम ।
जहाँ से लेना, जिसको देना, कर ले अपना काम ॥
आगे हाट मिले न कोई, कोई न आवे गाम ।
इन्द्रिन देह यहीं छुटकारा, चल तू अपने धाम ॥
तीर्थ शिवोम् न अवसर खोवे, भज ले तू श्रीराम ।।

(१३४) विविध

राग - हुसैनी कान्हरा ताल - दीपचन्दी

बढ़ चलो, मन चढ़ चलो है, महल सन्मुख दीखता ।
यार का जलवा वहीं पर, जो तुझे न दीखता ॥
झिलमिल तारे होत रहत है, सूरज न पर अतुल प्रकाशा ।
रूप सलोना चकमक चमके, पर नहीं तू भीगता ॥
अन्तर झाँको, दृष्टि लाओ, अन्तर ही है रास्ता ।
अन्तर तेरा यार विराजे, पर नहीं तू रीझता ॥
तीर्थ शिवोम् यह भेद अनोखा, जाने सोई जाने ।
जग तो दृष्टि बाहर कीनी, किस तरह फिर जानता ॥

(१३५) नाम

राग - भीमपलास ताल - केहरवा

रसना बिना हिलाए मनवा, सुनत नाम अन्तर में ।
न कोई रागी, न कोई जापी, ध्वनि उठत अन्तर में ॥
अजपा जप कोई कहत है इसको, कहत कोई है किरिया ।
भीग रहा मन तन है इसमें, घटित होत अन्तर में ॥
अनायास मन लीन है होवत, उन्मन भई अवस्था ।
राग रंग परकाश अनेकों, भए प्रकट अन्तर में ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, महिमा अपरम्पारा ।
न कोई गावत, नहीं बजावत, होत रंग अन्तर में ॥

(१३६) आनन्द

राग -दरबारी ताल - धुमाली

आदिअन्त मध्या आनन्दा, आनन्दा है सकल आनन्दा।
ऊपर नीचे सभी आनन्दा, बंध मुक्त है सकल आनन्दा ॥
जगत प्रसारत सकल आनन्दा ॥
ज्ञान और अज्ञान आनन्दा, ऊठत बैठत सकल आनन्दा ।
चलत फिरत देखत आनन्दा, ख़ावत धावत सकल आनन्दा ॥
जगत प्रसारित सकल आनन्दा ॥
सुख में दुख में सभी आनन्दा, भोगत सोवत सकल आनन्दा ।
ज्ञान ध्यान साधन आनन्दा, कहन सुनन हैं सकल आनन्दा ॥
जगत प्रसारत सकल आनन्दा ॥
तीर्थ शिवोम् है मन आनन्दा, तन इन्द्रिन में सकल आनन्दा ।
जग में कण कण प्रभु समाया, फिर न क्यों हो सकल आनन्दा ॥
जगत प्रसारत सकल आनन्दा ॥

(१३७) विविध

राग - जन सम्मोहिनी ताल- केहरवा

रक्षाबंधन बांधू तुमको, मन की डोरी से प्रभु मोरे।
छूट न जावे, टूट न जावे, बंधी सदा ही हे प्रभु मोरे॥
मन न छोड़े चरण कभी भी, बंधा रहे चरणों ही साथे।
यश अपयश में रक्षा करना, घर में, वन में, हे प्रभु मोरे॥
नाम तेरा रसना में नित ही, सदा सर्वदा कर में सेवा।
एक भरोसा पकड़े राखूं, तेरी आस प्रभुजी मोरे॥
मैं चंचल बालक अघराशि, क्या मैं जानूं लीला तेरी।
लीला तुम्हीं दिखावन हारे, लांघू माया है प्रभु मोरे॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु करतारे, कष्ट हरण दुख भंजक तुम हो।
बंधा रहे मन, बंधा रहूं मैं, चरणों में ही हे प्रभु मोरे॥

(१३८) नाम

राग -मिश्र खमाज ताल - केहरवा

नाम का भेद कोई ही जाने।
चेतन नाम न होए जब तक, क्यों कर उसको जाने॥
चेतनताई नाम है चेतन, चेतन करत क्रियाएँ।
चेतन नाम बिना मन मोरे, किरिया को क्या जाने॥
धन्य गुरु जिन किरपा कीनी, चेतन नाम जगाया।
कर्ताभाव विलीन भया है, दृष्टा किरिया जाने॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, अनुप अनुग्रह कीना।
मनवा मरै जरै गत होया, प्रेम अमोल न जाने॥

(१३९) विरह

राग -तिलक कामोद ताल- धुमाली

छोड़ गए पीरा हिरदय में, साजन जाते जाते मेरे ।
पीरा खाय रही हिरदय को, बुझत अगन न अन्तर मेरे ॥

दशा भयी है ऐसी मोरी, मन न लागे, पीव मिले न ।
कसकत रहत, बहाऊं अंसुअन, क्या प्रभु कीना अन्तर मेरे ॥

झूला झूलें, मन परचाएं, सक्खियां मिल मिल मंगल गाएं ।
मोरा मनवा रहत पिया ही, याद बनी ही अन्तर मेरे ॥

तीर्थ शिवोम् पिया हे सजना, दीपक विरह हृदय जलाया ।
लेत नहीं काय सुध आए, छटपत तड़पत अन्तर मेरे ॥

(१४०) आनन्द

राग - काफी ताल - केहरवा

छोड़ के मिथ्या जग यह दुखमय, करो गगन में वासा ।
बरसे जहाँ, सदा आनन्दा, मिटती जाए जगत पिपासा ॥

सुरती मूलाधार त्यागी, प्रकट लीलाए सुखमन ।
काम, क्रोध, मद, लोभ छोड़कर बुझा जलत जो घासा ॥

मनवा जाय दुआरे ठाड़ा, रस भीगा मत वारा ।
तीर्थ शिवोम् कृपा सद्गुरु की, आनन्द भया अगाधा ॥

(१४१) आनन्द

राग -सांवेरी ताल -केहरवा

चालो चालो चालो सखि हे, पी की सेज बुलाए ।
पी की सेज है, सुख घनेरा, लावन गले बुलाए ॥
बिखरे पुष्प मनोहर महकत, ध्वनि अलौकिक उभरे ।
अंग अंग पी मिलन को चाहे, नयन रहें अलसाए ॥
सूधो पांव परत न भू पर, डोलत गात रहियो है ।
मन में जागा भाव पिया का, हर्ष हर्ष हर्षाए ॥
जा मिलने को जीवन बीता, बीता जुबना मोरा ।
घड़ी वही अब आए रही है, साजन रह्या बुलाए ॥
तीर्थ शिवोम् हे सजनी चालो, रस्ता पीव निहारे ।
रूठ न जाए, निकल न जाए, मन मस्ती छा जाए ॥

(१४२) माया

राग - श्रीरंजनी ताल - धुमाली

मैं बालक अंजान बेचारा, बख्श देयो हे माया ।
मो पर करो सवारी तुम न, राखो दूर ही छाया ॥
जो तुम लागो, जात बढ़त ही, पल-पल छिन छिन करते ।
मैं तो अन्तर राम सुखी था, काहे मन भरमाया ॥
तुम हो शक्ति राम प्रभु की, राम ही प्रेरक तेरे ।
मैं भी राम का दास कहाऊं, काहे मुझे फसाया ॥
जो नित उचरत राम प्यारा, ता से दूर रहो तुम ।
न देयो पर राम उचारण, करत कपट और माया ॥
तीर्थ शिवोम् राम रघुवीरा, मुझे बचाओ या से ।
एक बार जो लागे पाछे, छूट न कोई पाया ॥

(१४३) विरह

राग - गोरख कल्याण ताल - धुमाली

कब से खोज रही पी अपना, अजहूं मिला नहीं तोहे।
पीव वियोग में सूजे नयना, मन का चैन नहीं तोहे॥
कितनी सजनी खोजन निकलीं, चिता जली मारगहिं।
प्रेम नहीं था पाका उनका, काचा प्रेम न पाए ओहे॥
साचा प्रेम जरै बिन अग्नि, बहे बिना पानी दरयाओ।
जब लो पीव दर्स न होवे, रहत जलावत प्रेम है तोहे॥
तीर्थ शिवोम् भुईं पर राखो, सीस जो रहत सदा ही ऊंचा।
ता पर नाच करो पी आगे, मिलत पिया है आय तोहे॥

(१४४) उद्बोधन

राग - हेम कल्याण ताल - केहरवा

भजन कर लो, भजन कर लो, चार दिन का है यह जीवन।
दे जला जो पास तेरे, पास तेरे इक यह जीवन॥
भजन कर लो मन लगा कर, त्याग चंचलता सभी ही।
तेलधारा वत भजन हो, ले कमा अपना यह जीवन॥
ज़िन्दगी का क्या भरोसा, सांस जब तक है चले।
यह छूटने जीवन से पहले, नेक कर अपना यह जीवन॥
तीर्थ ऐ शिवोम्, बन्दे, कर खुदी को दूर तू अब।
गर्व जब तेरा है टूटे, हो प्रकाशित तब यह जीवन॥

(१४५) विविध

राग -भीम पलासी ताल - केहरवा

काम, क्रोध मन बस कर लीना, कौन सा तीर चलाया है।
भूख नींद को जीत लिया तू, क्या पहाड़ उलटाया है॥
लोभ मोह और ममता को भी, मन से मार भगाया है।
दुःख-सुख को तू सम कर देखे, अचरज कौन कमाया है॥
तीर्थ शिवोम् जो देखे नयना, बोले मुख सो जो वाणी।
अभी पकड़ न आया तोहे, कुछ न अभी बनाया है॥

(१४६) विरह

राग- वसन्त ताल - केहरवा

निकलत जाय, निकलत जाए, रुत वसन्त की निकलत जाए।
निकल जाए मिलन की वेला, अजहूं पीव नहीं घर आए॥
विरथा जीवन, विरथा जौवन, विरथा पल-पल जात सिराए।
कटा वसन्त पिया बिन तोरा, अजहूं पीव न दर्स दिखाए॥
डोले जगहि विषयन में, याद पिया, न रंग उड़ाए।
नाचत डोलत छीजा तनवा, समझ नहीं पर तुझको आए॥
न ही चलकर जाए पिया घर, न पी को संदेश पठाए।
कैसे रीझे, माने कैसे, जो हिरदय दुख नहीं सुनाए॥
तीर्थ शिवोम् पिया बिन सजनी, यह बसन्त न अच्छो लागे।
पी होए, पी सेज मनाऊं, हिरदय बतियां खोल सुनाए॥

(१४७) आनन्द

राग -खमाज ताल- भजनी ठेका

प्रेम नशा जा जन को चढ्या, नशा किए बिन मस्त बना वह ।
लाव लश्कर साथ न कोई, वीरों में भी वीर बना वह ॥
धन दौलत बिन हाकिम बनया, अन्त में बने बेअन्ता वे ही ।
जिसने चाखा प्रेम प्याला, मस्त बना, अलमस्त बना वह ॥
रात बितावत जागि जागि करि, करत प्रभु की याद ही रहता ।
पीव समाया मन में ऐसा, घर ही प्रभु का हृदय बना वह ॥
तीर्थ शिवोम् खुमारी ऐसी, चढ़ी तो फिर वह उतरत नाहीं ।
पागल कर देती वह जन को, हृदय वियोग असीम बना वह ॥
अन्दर क्यों तू उतरत नाही, गोता मारत मन नाहीं ।
अन्दर राम प्यारा पाए, बैठा अन्तर ही माहीं ॥

(१४८) आनन्द

राग -काफी ताल - केहरवा

मोर तोर मैं लया पछाना, डर तो डरकर भागा ।
जब लौं मोर तोर हौं लागा, चला चक्र कर्मन का ।
अब तो बनया निर्भय मनवा, प्रेम ही अन्तर जागा ॥
आवागमन का भ्रम है टूटा, पाया महल शिखिर का ।
मनवा लीन हुआ मन माही, जग से भया बैरागा ॥
ऊंच नीच का भरम भुलाना, पशु बना था घूमत ।
भया आनन्दा अन्तर माहीं, दुख संताप त्यागा ॥
तीर्थ शिवोम् गर्व जब टूटा, तो अमृत फल पाया ।
अब तो नाचूं संग पिया के, थिरकन पाओ लागा ॥

(१४९) आनन्द

राग -गौड़ मल्हार ताल- भजनी ठेका

आज हुआ मतवारा मेरा मन, आज हुआ मतवारा ।
पिया का दर्शन पाया मैंने, सकल भया उजियारा ॥
चढ्या गगना होय उन्मनी, हुआ अनन्त प्रकाशा ।
सुखमन अन्दर सहज समाया, पाया रंग अपारा ॥
ममता तृष्णा काट के डारी, निर्मल होया मनवा ।
राग द्वेष दोऊ भागन लागे, मिटा प्रकट संसारा ॥
गगन मण्डल में लागे बाजन, बिना बजाए बाजे ।
नाचत गावत उछलत मनवा, हुआ जगत से न्यारा ॥
तीर्थ शिवोम् कृपा सद्गुरु की, तारी सहजे लागी ।
अब क्या लेना देना जग से, सूखा सभी पसारा ॥

(१५०) उद्बोधन

राग - मिश्र भैरवी ताल - दीपचंदी

लोग कहे पी दूर बसत है, पी हर रह्या समाय सेजे ।
दूर नहीं है पास ही तेरे, देखत ता को नहीं कलेजे ॥
देखौ पी को नयनन अपने, कहन सुनन की बात न मानूं ।
देखौं ठण्ड कलेजे आवे, साथ में सोऊं पी के सेजे ॥
खोजत फिरी जगत मैं सारा, पर पी मिलया अन्दर अपने ।
हरदम रही निहारत या को, मिलया आनन्द पी की सेजे ॥
तीर्थ शिवोम् सोई मैं साथे, अंग में अंग समाता जाई ।
मिला अलौकिक है सुख मोहे, गले पिया के, साथै सेजे ॥

(१५१) विनय

राग - जीवनपुरी ताल - भजनी ठेका

साजन देयो बताए मोहे, कौन देस तुम बासा ।
देस तुम्हारे में दुख नाही, नाहीं क्षुधा पिपासा ॥
हंसा केलि करे ताही पर, होत गुंजार शब्द का ।
जो नर वास करे ताही पर, परत नहीं जग वासा ॥
सगुण अगुण का द्वन्द्व न कोई, काल न जम का फासा ।
रहें आनन्द मगन जन सारे, ज्ञान का लेत प्रसादा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, जो हो किरपा तेरी ।
पात्र नहीं, तुम सर्व-समर्था, हूं तेरा मैं दासा ॥

(१५२) उद्बोधन

राग - धानी ताल - केहरवा

प्राणी जप ले तू हरि नाम ।
धन सम्पत और कुटुम्ब कबीला, यह नहीं आवे काम ॥
भाग रहा जिस धन के पाछे, साथ चले न दाम ।
जग पीछे न बन मतवाला, राम जपो निश्काम ॥
छोड़ जगत जब चल देवेगा, चले अकेला धाम ।
तीर्थ शिवोम् समझ मन मूरख, है दुनिया बेकाम ॥

(१५३) विनय

राग - अहीर भैरव ताल- दादरा

हे प्रभु! बदनीयती से, ले बचा, मुझको बचा।
खुशनसीबी, मैं करूँ सेवा तेरी, सेवा करा॥
छोड़कर के जिस्म को, कुछ भी न मेरे पास।
पास हो गर कुछ भी मेरे, काम तेरा ही करा॥
चहकता जग में रहूं में, गम न कुछ भी पास हो।
रहमतों का, नेऽमतों का, ज्ञान दे मुझको करा॥
गर मरूं तेरे लिए मैं, जीता भी तेरे लिए।
नाम तेरा ही लबों पर, नाम जप अपना करा॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् मलिक, तुझको मुश्किल कुछ नहीं।
तेरी रहमत गर हो मुझ पर, दे जगत मुझ से छुड़ा॥

(१५४) उद्बोधन

राग -मिश्र पिलू ताल - केहरवा

लड़न झगड़ना जग को दे दे, तू तो राम भजन कर।
जग का काम झगड़ना लड़ना, तू तो राम जपन लग॥
यह संसार झाड़ और झांकड़, वन फैला कांटन का।
उलझ उलझ कर मरने दे जग, तू तो राम जपन लग॥
हाथी चाल चले हैं अपनी, परवाह नहीं किसी की।
भौंकत जग है, भौंकन दे तू, तू तो राम जपन लग॥
सावन भादौं बाढ़ नदी में, नदी समान जगत है।
डूबन चाहे, डूबन दे तू, तू तो राम जपन लग॥
तीर्थ शिवोम् रखो मन धीरज, राम तेरा रखवाला।
जग को अपनी चाल चलन दे, तू तो राम जपन लग॥

(१५५) विरह (होली)

राग- काफी ताल - द्रुत एक ताल

जाए बीती रही उमरिया, होली खेलन की
तेरी बीती जाए वेला, होली खेलन की।
मोरा गया बिछ़ड़ है साजन, अब मैं काय करूं
पर जी में तो आय रही है, होली खेलन की॥

साजन मोरे, मैं साजन की, विरह आए ख़ड़ा है
साजन ही जीवन है मोरा, साजन न, जीवन न।
मनवा डोलत इधर-उधर है, याद सतावे पी की
पर जी में तो आए रही है, होली खेलन की॥

यहाँ व्याकुल मनवा मोरा, उधर बिसार दियो मो
न मन लागे जग के माहीं, नाहीं पिया मिले मो।
हाल-बेहाल पिया बिन मोरा, साजन नज़र न आवे
पर जी में तो आय रही है, होली खेलन की॥

तीर्थ शिवोम् पियारे सजना, आ मिल, आ मिल, आ मिल
झांकत झांकत थाके नयनां, राह तेरे आवन की।
कब सजना मिल जाए मो को कब खेलूं संग होली
मोरे जी में आय रही है, होली खेलन की॥

(१५६) गुरुदेव

राग - देवगिरी बिलावल ताल - धुमाली

गुरुदेव ठाकुर तुम मोरे, मैं सेवक हूँ तोरा।
जो कुछ मैं हूं दिया तुमने, मैं सेवक हूँ तोरा॥

कोई मारे, मोहे सतावे, विनय करूं तो ही सों।
तुम को छोड़ कहां मैं जाऊं, मैं सेवक हूं, तोरा॥

सोऽहमनाद किया अन्तर में, जाग्रत किरपा तोरी।
लीन रहूं, तल्लीन रहूं मैं, मैं सेवक हूँ तोरा॥

तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, विनय यही चरणों में।
राखूं हिरदय भाव सदा यह, मैं सेवक हूँ तोरा॥

(१५७) मीरा गीत

राग - बागेश्री ताल धुमाली

करो कृपा हे मीरा रानी ।
प्रेम की वर्षा मो पर होवे, दया तुम्हारी मीरा रानी ॥
तुम अवतार प्रेम भक्ति का, भक्तन राह दिखाया ।
प्रेम मेरे अन्तर में भर दो, प्रेम दीवानी मीरा रानी ॥
जगत जलत विषयन भोगन में, प्रेम का सार न जाने ।
सार प्रकट किरपा से तुमरी, प्रेम का सार हो मीरा रानी ॥
दुखी दीन जन शरण तिहारी, प्रेम-प्रभु की कृपा करो ।
है कुपात्र, है नहीं पात्रता, सम-दृष्टि तुम मीरा रानी ॥
तीर्थ शिवोम् घमण्डी पापी, गुण न कोई मो में ।
पर तेरे दर आन पड़ा हूँ, प्रेम की भिक्षा, मीरा रानी ॥

(१५८) उद्बोधन

राग - मिश्रखमाज ताल - धुमाली

देर थोड़ी की बात है, यह तन जलने वाला है ।
फिर यह जगत प्यारा तुझको, तुझे भूलने वाला है ॥
काहे करत पसारा इतना, करत रहा हाए हाए ।
छोड़ जगत में इसी जगह सब, तू तो चलने वाला है ॥
लपटें आग जलाए तोहे, धू धू कर यह तन तेरा ।
जगत वासना मन ही लेकर, तू तो जलने वाला है ॥
जीते जी भी जलत रहा तू, काम क्रोध की अग्नि में ।
जीते जलना, मरते जलना, जलना एक निशाना है ॥
तीर्थ शिवोम् समझ तू मूरख, काहे विरथा जलत रहा ।
राम भजन से टूटे गर्वा, राम ही अन्त ठिकाना है ॥

(१५९) उद्बोधन

राग- भैरवी ताल - केहरवा

मुक्ति लाभ न चाहे कोई, करत सभी ही स्वर्ग की आशा ।
जौ लगि स्वर्ग की आशा मन में, तब लौ हरि चरन न वासा ॥
देखन सुनन पढ़न में आवे, होवत सबको नहीं विरागा ।
तब लौं प्रेम नहीं हरि चरणी, तब लौ हरि चरन न वासा ॥
स्वर्ग का वासा नित्य का नाहीं, आए जीव यहीं फिर आए ।
जब लौं आवागमन लगा है, तब लौं हरि चरन न वासा ॥
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, काहे आस स्वर्ग की करता
आस छोड़, हरि भजन लगा मन, हो जावे हरि चरनन वासा ॥

(१६०) नाम

राग - पहाड़ी ताल - दीपचन्दी

नाम का भेद कोई ही जानत ।
रसना हिले नहीं मुख बोले, फिर भी नाम रहे मन जापत ॥
चेतन नाम करे यह किरिया, चेतन बिन इन्द्रिन के डोलत ।
चेतन नाम उचारत मन में, चेतन ही जप है यह जापत ॥
निस दिन लाग रहे यह रटना, बिन माला, बिन जतन किए से ।
यह सिमरन ही साचा सिमरन, यह सिमरन बिन जापे जापत ॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, नाव चढ़ाओ अपनी मोहे ।
अनुभव मुझको जाप अनोखा, जो बिन जापे जाप है जापत ॥

(१६१) प्रेम

राग - अड़ाना ताल - त्रिताल

प्रेम नगर में वास करो रे, प्रेम नगर में वासा ।
प्रेम चदरिया ओढ़ रहो तुम, न तृष्णा न आसा ॥
अन्तर गगने नाम निरन्तर, हृदयभरा अनुरागा ।
मन तन अर्पन पिया को अपने, जो कुछ हो पासा ॥
हृदय अगन को राखो अन्तर, बाहर परगट नाहीं ।
अन्दर अन्दर सुलग रहे वह, काटे पाप मनासा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, रहूं प्रेम रंग राती ।
समझ बूझ जग कछु नाही, सदा रहूं तुम पासा ॥

(१६२) विनय

राग - आभोगी ताल - केहरवा

साजन तेरे कारण मैं ने धार लिया वैराग ।
इक तेरा दर्शन ही चाहूं, नहीं दूजा मन रागा ॥
नयनां रहते जपत निरन्तर, अंसुअन माला नाम तेरे की ।
बहती धारा प्रेम की अन्तर, कसक तेरा मन लागा ॥
नाम तेरे पर भयी विरागिन, नाम ही रहत समाई ।
नाम छोड़ मनवा नहीं चंचल, मनवा नाम ही लागा ॥
विरह अग्नि जलत रहे मन, बुझे न कभी, कहीं भी ।
विरह ही धन-दौलत मेरी, बना विरह अनुरागा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, लगा रहे मन चरणीं ।
चरण-कमल हिरदय नित धारूं तुम ही है मन पागा ॥

(१६३) उद्बोधन

राग - देस ताल - धुमाली

माथे पर तो तिलक सजा है, हाथ में पकड़ी माला।
पर मनवा तो तम में डूबा, कबहूं नहीं उजाला॥
माला हाथ में रहती घूमत, मनवा दशों दिशाएँ।
ऐसा सिमरन, नहीं जपन है, मनवा नहीं उजाला॥
पापी कपटी चोर पाखण्डी, बनते सभी भगत हैं।
जगत दिखावा चाल सके पर, प्रभु को सभी उजाला॥
छोड़ मकारी, छोड़ दिखावा, लाग हरि चरणों में।
मन की कालिख दूर करो सब, तब मन होत उजाला॥
तीर्थ शिवोम् है मूरख मनवा, जात उमरिया बीती।
काहे तम में वृथा गवावे, होवत नहीं उजाला॥

(१६४) विनय

राग- मदमाद सारंग ताल - केहरवा

गरिब नवाज है साजन मेरे, राखो मेरी लाज।
हालत दुखिया देख के मेरी, तुम्हें न आवत लाज।।
मो सम पापी नीच न जग में, दीखत कहीं भी नाहीं।
तुम तो रहत बजावत वंशी, आत न तुम को लाज॥
मन में आश न दूजी कोई, चाहत एक तेरी ही।
इतनी विनय भी मानत नाहीं, फिर भी करत न लाज॥
तीर्थ शिवोम् प्रभु भगवन्ता, तुमरा एक भरोसा।
विषयन माही रही जलत हूँ, पर तुमको नहीं लाज॥

(१६५) उद्बोधन

राग - झीलक (भैरव) ताल -धुमाली

छीजत जाए, छीजत जाये, जीवन तेरा छीजत जाए।
हर एक पल के बीतन साथे, जीवन तेरा बीतत जाए॥
एक दिवस आएगा ऐसा, देह तेरी माटी मिल जाए।
तेरा ध्यान जगत के ताईं, यह न जाने छीजत जाए॥
रहा सजाए देह को अपने, अकड़ अकड़ चाले है तू।
टूट जाएगी अकड़ यह सारी, देह तेरा जब छीजत जाए॥
जब लौ सांस गति है चाले, धारण जीवन किए तू बैठा।
गति सांस जब रुक जाएगी, देह यह इक दम छीजत जाए॥
तीर्थ शिवोम् समझ रे भाई, देह यह माया खेल है सारा।
राम भजन में इसे लगा ले, विरथा नहीं यह छीजत जाए॥

(१६६) उद्बोधन

राग मिश्र काफी ताल - खेमटा

देखो देखो वेला आई,यह तन जरने वाला है।
रख सम्भाल कितना तू इसको, इक दिन मरने वाला है॥
तू तो करता जगत पसारा, जैसे तुझे सदा है रहना।
यह है तेरी मूरखताई, कूच तू करने वाला है॥
जब यह देह जलेगा प्यारे, रोएं समधी सब तेरे।
देखत रहे चिता में जलते, नहीं बचाने वाला है॥
काम क्रोध मद लोभ में डूबे, या में जरत रहा संसारा।
धरी वासना रह जाएगी, इक दिन यहाँ से जाना है॥
तीर्थ शिवोम् समझ ले बन्दे, राम ही पार करे तुझको।
मोह त्याग तू देह का पगले, संग सदा न रहना है॥

(१६७) उद्बोधन

राग- सारंग ताल - त्रिताल

मनवा क्यों तू फिरत गवार।
जग का अनुभव पा करके तू करता नहीं विचार॥
या जग साचा लागे तोहे, या में ही मन जाए।
शरण प्रभु न लेवे मूरख, भूल रहा संसार॥
जग में निर्मल है कछु नाहीं, स्वारथ सब ही लागा।
मेरा मेरा करत रहा तू, अपनी ओर निहार॥
यह जग छाया, यह जग माया, सारा जगत भुलाया।
आशा तृष्णा नाच नचावे, माया का विस्तार॥
मन में अपने समझ लेय तू, जग तो साथ न चाले।
दीखत है दर्पण की नाई, तनिक नहीं है सार॥
तीर्थ शिवोम् है मूरख मनवा, प्रभु भजन तू कर ले।
प्रभु सहारा साचा जग में, शरण होए निस्तार॥

(१६८) वेदान्त

राग - जैजवन्ती ताल - केहरवा

डाल एक पर पंछी बैठा, डाल डाल से न्यारा।
देखत रहा तमाशा जग का, करत न कछु विचारा॥
न खाय वह केवल देखे, भूख न प्यास सताए लेत।
आनन्द जगत माया का, रहकर जग से न्यारा॥
ता की छाया जीव बना जो, रहा जगत उलझाए।
उछलत, कूदत, भागत फिरता, रहत न जग से न्यारा॥
छाया तो है केवल छाया, देखे और दिखाए।
भान्ति भान्ति के स्वांग बनाए, डूबत बीच मझारा॥
तीर्थ शिवोम् यह भेद प्रभु का, कोई विरला जाने।
जो जाने भव पार वह उतरे, छूटत झगड़ा सारा॥

(१६९) उद्बोधन

राग- यमन ताल - केहरवा

खिला वसन्त है अन्दर तेरे, तू उदास काहे बैठा ।
अन्तर तो आनन्द समाया, तू विक्षिप्त बना बैठा ॥
काहे बना तमाशा जग में, सुख तो पास सदा तेरे ।
पर तू ही पहचान न पाता, दुखिया मन क्यों हो बैठा ॥
खिलने दे फुलवाड़ी अन्तर, जल तरंग भी अन्तर में ।
ऊबर खाबर काकर पाथर, काहे हृदय लिए बैठा ॥
तम अंध्यारा, जगत वासना, मन मलीन तेरा करता ।
झटक वासना, मन निर्मल हो, तब ही सुखी हुआ बैठा ॥
तीर्थ शिवोम् हे पगले मनवा, रहे समेटे सुख अन्तर ।
फिर भी पल पल क्षण क्षण काहे, तू अलमस्त बना बैठा ॥

(१७०) विनय

राग -पट्टदीप ताल - केहरवा

मैं खिला बगिया में तेरी, तोड़ लो प्रीतम मुझे ।
पुष्प हूँ श्रृंगार कर लो, धार गल प्रीतम मुझे ॥
गिर न जाऊं मैं ज़मीं पर, पहले इससे तोड़ लो ।
खुशनसीबी होगी मेरी, मैं चढ़ूं प्रीतम तुझे ॥
कौन जाने किस जगह पर, काम आऊं मैं कहां ।
तेरे चरणों पर चढ़ूं जो, चैन हो प्रीतम मुझे ॥
न बिछा ले मुझको कोई, सेज पर अपनी कहीं ।
मैं खिला तेरे लिए ही, ग्रहण कर प्रीतम मुझे ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् मैं, साधन लिए पैदा हुआ ।
मैं उलझ जग में न जाऊं, शरण ले प्रीतम मुझे ॥

(१७१) विनय

राग - मारवा ताल - रूपक

मैं झिझकता डर रहा, किस मुंह से आऊं सामने ।
कर्म तो अच्छा न कोई, क्या दिखाऊं सामने ॥
उम्र तो यूं ही गुज़ारी, पाप कर्मों रत रहा ।
मुंह छुपाता फिर रहा हूं, क्या धरूं मैं सामने ॥
मन में है ये ही भरोसा, पतित-पावन हो प्रभु ।
यह ही आशा एक मन में, जो मैं आऊं सामने ॥
तुम अनन्ता हो प्रभुजी, मायातीत स्वरूप हो ।
मैं रहा जकड़ा जगत में, कर प्रभु मो सामने ॥
तीर्थ मैं शिव ओम् तेरी शरण में हूँ आ पड़ा ।
कर कृपा ऐसी प्रभुजी, तुमको देखूं सामने ॥

(१७२) विनय

राग- चंद्रकौंस ताल - धुमाली

मैं छोटा, मेरा घर भी छोटा, तू भी होता छोटा ।
कृपा तेरी जो मो पर होए, तो छोटा घर मोटा ॥
घट घट तेरा वासा प्रीतम, तू चींटी में छोटा ।
हस्ती रूप विशाल बना है, हस्ती में तू मोटा ॥
तेरे अनंद आनन्दित मनवा, तू रूठे मन छोटा ।
कृपावन्त हो जीव पह जब तू। तो छोटा मन मोटा ॥
जीव बंधा सीमा मैं ऐसा, सीमित मन है छोटा ।
परगट रूप तेरा अन्तर में, तो ही होता मोटा ॥
तीर्थ शिवोम् यह काया छोटी, मन का रूप भी छोटा ।
छोटा विलय बड़े में होता, तो ही छोटा मोटा ॥

(१७३) उद्बोधन

राग - मिश्र शिवरंजनी ताल - दादरा

मुझको तो जाना था आगे, चल रहा पीछे को हूँ।
सामने तो मौत दीखे, जा रहा मैं जग को हूँ॥
काश मैं कुछ देख पाता, समझता कुछ सोचता।
जग को ही घर समझे बैठा, अब तो उठ जाने को हूँ॥
हे प्रभु! तू ही बता, मुझको तो कुछ सूझे नहीं।
मन मेरा काबू नहीं है, मन के मैं काबू में हूँ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् वेला तो निकल जाने को है।
बीच मैं दुविधा पड़ा हूँ, पर अभी भी दूर हूँ॥

(१७४) विनय

राग -मिश्र शिवरंजनी ताल -रूपक

होता रहे गायन तेरा, अन्तर में मेरे हे प्रभु।
सुनता रहूं, सुनता रहूं, सुनता रहूं मैं हे प्रभु॥
मन न जाए हट मेरा, दूजे किसी भी ओर को।
इक तेरे गुणगान में ही, मन लगा मेरे प्रभु॥
हो रहा गायन तेरा है, जग के कण कण में रमा।
जीव के अन्दर भी बाहर हो रही वर्षा प्रभु॥
मैं तो बंधन में पड़ा, पर तू छुड़ावनहार है।
सुन तेरी उन्मुक्त वीणा, मैं भी छूटूँ हे प्रभु॥
तीर्थ हे शिव ओम् मेरी है विनय तुम से प्रभु।
मैं रहूं नितगान सुनता, बन तेरा मेरे प्रभु॥

(१७५) आनन्द

राग- पीलू ताल - कव्वाली ठेका

यमुना के तीर मुरलिया बाजत, सुन सुन मस्त हुआ मन मोरा।
गोपिन ग्वालिन झूम रही है, पाओ बेबस थिरकत जावे।
कृष्णहि मनवा लागा मोरा॥

श्याम की मुरली मन हर लेवे, देत छुड़ावत है वह दुख।
धन्य धन्य वह गोपिन व्रज की, मनवा जिन हरि चरनन दीना।
भावतवंशी मनवा मोरा॥

उठत कलेजे पीर सुनत न, जा दिन मैं हूँ कृष्ण हि वंशी।
सूखा सूखा जग मो लागे, अन्तर आवे बाहर मेरा।
दुखी कलेजा बहुत ही मोरा॥

तीर्थ शिवोम् सुनाओ वंशी, उधरहि मनवा, लोचत मनवा।
वंशी बिन कुछ नहीं सुहावे, बिन वंशी अधीर है मनवा।
वंशी तान ही जीवन मोरा॥

(१७६) ग़ज़ल

राग गारा ताल रूपक

करे कोशिश हज़ारो, दिल से जा सकता नहीं।
कोई भी दिलकश हंसी आँखों में आ सकता नहीं॥

मैं भी ये ही गर कहूं तू याद न आए मुझे।
तूने ऐसा घर किया है, मैं हटा सकता नहीं॥

अब तो रहना ही पड़ेगा, दिल में ऐ मेरे प्रभु।
दिल यह अब तेरा ही घर है, छोड़ जा सकता नहीं॥

तू तो लामहदूद है, पर दिल में मेरे कैद है।
अब यह फाटक बन्द है, अब तो खुला सकता नहीं॥

तीर्थ ऐ शिव ओम् मालिक, अब पकड़ में आ गया।
नज़र आता था, कहीं न, अब बचा सकता नहीं॥

(१७७) उद्बोधन

राग -यमन ताल- केहरवा

चाहे जीव जगत में कितना, भटक भटक भरमाए वो ।
प्रीतम प्यारा सन्मुख हरदम, अनुपम रूप दिखाए वो ॥
जीव न जाने, जीव न समझे, लीला है यह प्रभु-वर की ।
अंध बना वह जग ही देखे, आशा में भरमाए वो ॥
न जाने वह भेद प्रभु का, पहले वो अन्दर दीखे ।
तब दीखे वो बाहर जग में, सभी नूर बरसाए वो ॥
मन मन्दिर ही तीरथ जन का, मन ही उसका मारग है ।
मन ही राह दिखाए जग को, मन ही कर्म कमाए वो ॥
तीर्थ शिवोम् हे मनवा मोरे, तू क्यों पड़ा जगत पाछे ।
रूप सम्भारो मनवा अपना, काहे को दुख पाए वो ॥

(१७८) आनन्द

राग -भूपाली तोड़ी ताल- भजनी ठेका

रंग चढ़ा है मो पर ऐसा, सुरत अकासे चाली ।
ठुमक ठुमक कर चढ़ती जाए, मनवा सगला खाली ॥
लागी सुरत प्रभु सों ऐसी, भूल गया जग सारा ।
कुरसी मेज़, बिछौना छूटा, न गिलास न थाली ॥
रहा दुआरे बाहर जग है, अन्तर एक समाया ।
एक अकेला, दूजा नाहीं, न कोई देवे गाली ॥
अन्तर जग भी बाहर भागा, छोड़ बसेरा मन का ।
जाय सुरत पिया घर ठाड़ी, न गोरी न काली ॥
तीर्थ शिवोम् सुरतिया प्यारी, मस्त रहो अपने में ।
झंझट सब ही माया काया, देखी परखी भाली ॥

(१७९) उद्बोधन

राग - भैरवी ताल - केहरवा

गर्व देखो कैसी बात जगत में करत है माटी ।
माटी रचा जगत है सारा, उछलत, कूदत माटी ॥
माटी मारे, माटी खाये, माटी ऊपर नीचे ।
माटी की ही धारा बहती, करत है भगदड़ माटी ॥
माटी नाचे, माटी गाए, माटी करे तमाशे ।
माटी रूप अनेकों धारे, करे कराए माटी ॥
माटी जन्मे, माटी मरती, माटी जीवन जीती ।
माटी तोड़े, वही बनाए, लीला सब ही माटी ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो हे भाई, काहे गर्व करे तू ।
माटी, माटी, माटी, माटी, सब माटी ही माटी ॥

(१८०) विनय

राग - तिलंग ताल - रूपक

मैं मनाऊँ तुम को प्रीतम, मान जाओ मान जाओ ।
छोड़कर शिकवे गिले सब, मान जाओ मान जाओ ॥
मैं अजानी, तू सयाना, भूल मुझ से ही हुई है ।
मन लगाया जग में मैंने, मान जाओ मान जाओ ॥
रख दिया दुनिया में मुझको, ठोकरें खाई बहुत हैं ।
अब हैं मैं ने कान पकड़े, मान जाओ, मान जाओ ॥
तू दया- सागर कृपालु, बख्शना आदत तेरी है ।
कर छमा, दर पर हूं, आई मान जाओ, मान जाओ ॥
तीर्थ ऐ शिवोम् साजन, अब न फेरो मुंह उधर को ।
बिन तेरे मैं रह सकूं न, मान जाओ, मान जाओ ॥

(१८१) पंजाबी

राग- भीमपलास ताल - केहरवा

कुझ पाया, कुझ अजे वी नाहीं, सतगुरु राह वखाया ।
रोंदया मैंनू देय दिलासा, राह प्रीतम ते लाया ॥
राह ते दिसया, पर मैं ठोकर खावा ।
सतगुर इक सहारा मैंनू, जग दा रूप वखाया ॥
जग तो ते दिल हरदा जावे, वल्ल प्रीतम दे वददा ।
उठदयां ढैदियां संभल संभल के, प्रीतम राह चलाया ॥
यार मिलन दी आसा जागी, छड्ड मान मर्यादा ।
केहड़ा वेला प्रीतम दिस्से, तड़पे दिल घबराया ॥
तीर्थ शिवोम् पिआरा तक्कां, उठ उठ झाती पावां ।
दिल विच इक्को आस है लग्गी, प्रीतम इक समाया ॥

(१८२) प्रतीक्षा

राग - जीवनपुरी ताल - भजनी ठेका

सावन मेघा रिमझिम आया, पीय संदेशा लाया ।
साजन आवन वेला आई मुख-मण्डल हर्षाया ॥
रिमझिम रिमझिम रिमझिम रिमझिम प्रेम की वर्षा बरसे ।
तनवा मनवा भया आनन्दित, चहुं दिशा छाया ॥
उठ सजनी श्रृंगार तू कर ले, पी आवन ही को है ।
बीत न जाय अवसर विरथा, बादर मुस्काया ॥
तीर्थ शिवोम् हे भोली सजनी, बनी ठनी तुम रहियो ।
पिया मिलन का शुभ संदेशा, ले बदरा घर आया ॥

(१८३) उद्बोधन

राग - श्री रंजनी ताल - केहरवा

मन में तो अंधेरा छाया, पूजा-पाठ करन लागा ।
बैठ अंधेरे तम ही दीखे, काहे दम्भ करन लागा ॥
जो मिलन चाहे प्रभु से कर प्रकाशित मन तेरा ।
तब मिले तेरा प्रभु है, काहे उलट चलन लागा ॥
मन की खेती को संवारे, दूर अपना गर्व कर ।
तब बने मन तेरा निर्मल, दर्शन प्रभु करन लागा ॥
तीर्थ शिवोम् हे पापी मनवा, काहे करत पाखण्ड रहा ।
रहत सदा जग विचरण करता, तू उपदेश करन लागा ॥

(१८४) नाम

राग -बिलावल ताल -रूपक

मन बना था वन कि भ्रम के झाड़ से ।
काट डाले सब प्रभु ने नाम से ॥
नाम चेतन जो दिया गुरुदेव ने ।
दूर तृष्णा सब ही आत्म-भाव से ॥
भूल जाते जो हरि के नाम को ।
रहत जलता उनका अन्तर आग से ॥
भटकते फिरते अनेकों योनियां ।
हैं झुके रहते विषय के भार से ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् जप ले राम को ।
मन तेरा निर्मल बनेगा ताप से ॥

(१८५) गज़ल

राग- रामकली ताल - दीपचन्दी

हम-प्याला हम-निवाला, हम सफर दोनों बने।
रास्ता भटका मैं ऐसा कुछ बनाए न बने॥
जगत की तारिकियों बारीकियों में गुम हुआ।
कि छुड़ाए न छूटे और है हटाए न हटे॥
अब जहाँ है और मैं हूँ, दूसरा दीखे नहीं।
भूल बैठा चेहरा अपना, ढूढ पाए न बने॥
है मेरा महबूब कब से हो गया मुझसे जुदा।
खोजता फिरता उसे मैं, पर बुलाए न बने॥
मैं खड़ा शिव ओम् अब हूँ इंतजारे-यार में।
पर दिखाई दे कहीं न, तड़पता सुबहो - ढले॥

(१८६) ग़ज़ल

राग -मिश्र काफी ताल - केहरवा

सहन ही करता रहा, उफ् तक निकाली ही नहीं।
छूट न जाए यह मंजिल, दिल में यह ठानी कहीं॥
कैसी नफरत कैसी तोहमत, सब मुझे मंजूर है।
भोग लूं किस्मत को अपनी, बन सके सब ही यहीं॥
पर मेरा मालिक कि मुझसे, हो कभी भी दूर न।
याद तो दिल में बनी ही, सब कहीं और हर कहीं॥
लौ लगी दिल में रहे, जोशे-जुनूं पैदा रहे।
ज़िन्दगी का क्या भरोसा, कब रहे कब वह नहीं॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् अब ले, रख मुझे कदमों में ही।
मैं बना नाचीज़ बन्दा, तेरी खिदमत हर कहीं॥

(१८७) गज़ल

राग - चारुकेशी ताल - केहरवा

तेरी दुनिया में जो आया, खूब दुनिया देख ली ।
कशमकश व सीनाज़ोरी खूब होती देख ली ॥

न किसी से कुछ है मतलब सब है स्वारथ ही लगे ।
आपाधापी मच रही, बन्दानवाज़ी देख ली ॥

जो भला रहना है चाहे। रह वह सकता ही नहीं ।
टांग ही खँचे है दूजे, जग हसाई देख ली ॥

तौबा तौबा मेरी तौबा, अब न आऊं मैं यहां ।
आ करूं मैं क्या यहां पर, बेन्याज़ी देख ली ॥

तीर्थ ऐ शिव ओम् मालिक, पास अपने रख मुझे ।
बाज़ आया मैं जहाँ से, क्या कहूं ? बस देख ली ॥

(१८८) ग़ज़ल

राग- भूप ताल- दीपचंदी

पा लिया मैं पा लिया, साजन पियारा पा लिया है ।
कृपा गुरुदेव कीनी, मोहे अलख लखा दिया ॥

था वह हरदम पास मेरे, फिर भी मुझसे दूर था ।
मुंह उघाड़ा करके मेरा, मोहे पी दिखला दिया ॥

ढूंढती फिरती पिया को, ओढ़ चादर मुंह पह थी ।
देखती कैसे पिया को, भ्रम मेरा हटवा दिया ॥

अब तो चादर हट चुकी है, पीव मेरे सामने ।
हूं सुशोभित साथ पी के, मन मेरा भरवा दिया ॥

तीर्थ ऐ शिव ओम् गुरवर, क्या कृपा तेरी भयी ।
जात थी डूबी भंवर में, मोहे पार करा दिया ॥

(१८९) गज़ल

राग -रागेश्री ताल- रूपक

अलिमें मसरूफियत में, मैं ने सब कुछ पा लिया ।
जो नज़र आए नहीं था, सतगुरु दिखला दिया ॥
दोस्त है दुश्मन कहीं वह, आशिको माशूक है ।
है वही दुनिया नजारे - रास्ता दिखला दिया ॥
है बना वह ही पुजारी, वह सजाए हाट है ।
खेल वह क्या क्या करे, सब ही मुझे दिखला दिया ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् मालिक, तू रहीम करीम है ।
महर जिस पर भी हो तेरी, उसने सब कुछ पा लिया ॥
चार दीवारी काहे सोया, भाग चलो तुम जीवा ।
सुख दुख काहे भोग रहा, तू छोड़ धरत तुम जीवा ॥

(१९०) ग़ज़ल

राग- भैरवी ताल - दीपचंदी

उलझनों नाकामियों में, ज़िन्दगी सब कट गई ।
मैं तड़पता ही रहा और, उम्र यूं ही घट गई ॥
है मेरी ताकत से बाहर, कामयाबी खोजना ।
गर प्रभु चाहेगा तो ही, है मुसीबत हट गई ॥
डूबता ही मैं रहा, गहरे खुदी दरयाओ में ।
पर जो चाहा वह हुआ न, पर खुदी न मिट गई ॥
मेरी हालत देखकर, पत्थर भी रोने लग गए ।
पर नहीं पिघली खुदी, यह न ज़रा भी घट गई ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् तू, रोता रहेगा इस तरह ।
जब तलक रहमत प्रभु न, न ही सुख कट गई ॥

(१९१) ग़ज़ल
राग- शंकरा ताल- रूपक

मौत से डरता रहा मैं, डर के मरता ही रहा।
मौत पर पीछा न छोड़े, पाप करता ही रहा॥
न भुलाया मौत को ही, न भुलाया पाप को।
इस तरह मैं ज़िन्दगी भर, आग ही जलता रहा॥
वक्त जाने का जो आकर, आ खड़ा है सामने।
मुँह छुपाता फिर रहा हूँ, डर तो बढ़ता ही रहा॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् अब तू, भाग कर जाए कहां।
मौत तो छोड़े तुझे न, कुछ भी करता ही रहा॥

(१९२) ग़ज़ल
राग -यमन ताल -केहरवा

सिर मेरे होते हज़ारो, सौंप देती सब तुम्हें।
एक सिर ही है मिला वह, सौंप है दिया तुम्हें॥
सूरमा आगे बढ़े हैं, कदम न पीछे हटे।
ज़िन्दगी तेरे लिए ही, सौंप ही दी है तुम्हें॥
जो तेरे प्यारे प्रभु हैं, तुम को ही बस जानते।
जो भी उनके पास में हो, सौंप देते सब तुम्हें॥
जब हो लालच दिल में अपने, इश्क होता ही नहीं।
दिल हुआ तेरे हवाले, ख्वाहिशें सब ही तुम्हें॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् तेरी, मौज ही मेरी खुशी।
जो तमन्ना आरजुऐं, सौंप सब ही दी तुम्हें॥

(१९३) गज़ल
राग- पीलू ताल- रूपक

जग मिलावा क्षणिक है, फिर हो न हो मिलना कभी ।
जग जभी है छूटता, अपने पराए सब तभी ॥
जीव जब आए यहां पर, उलझ है जाता यहां ।
मेरा तेरा मन के अन्दर, हर कभी और हर तभी ॥
वह यह है समझा कि रहना, है हमेशा ही यहीं ।
मौत का डंका बजे जब, जाना पड़ता है, तभी ॥
क्यों उलझते हो जगत में, क्यों दुखी होते यहां ।
छोड़ है जाना जगत को, जब बुलाए तब तभी ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् मूरख, क्यों लगाए मन रहा ।
चांदनी यह चार दिन की, फिर यह दुनिया न कभी ॥

(१९४) ग़ज़ल
राग -खमाज ताल- दीपचन्दी

कोई सच्चा हो जो आशिक, पा है जाता पीव को ।
राह में ही जो गिरे हैं, वह क्या पाए पीव को ॥
हो कोई पूरा जो प्रेमी, राह चल सकता वही ।
पहुँच पाता एक दिन वह, देख पाता पीव को ॥
जीते जी मरता है कोई, दिल तमन्ना हो नहीं ।
जी उठे मर कर दोबारा, वह ही मिलता पीव को ॥
मान बेइज्ज़त बराबर, सुख या दुख का ध्यान न ।
हो उघाड़ा, या रहे सज, मिल ही जावे पीव को ॥
पूरा जो शिव ओम् आशिक, मन में न कोई विकार ।
वह ही पाता, वह ही पाता, वह ही पाए पीव को ॥

(१९५) गज़ल

राग - मिश्रकाफी ताल - रूपक

इश्क ही है दर्द मेरा, है दवा भी इश्क ही ।
इश्क ही मन्ज़िल मेरी है, है दुआ भी इश्क ही ॥
इश्क का बीमार हूँ मैं, क्या पता दुनिया को यह ।
इश्क ही हिकमत करे है, रास्ता इक इश्क ही ॥
यार अन्दर है हमारे, यार अन्दर गुम हुआ ।
यार को अन्दर ही खोजे, हुनर यह बस इश्क ही ॥
इश्क की ऐसी अदा है, आ के फिर जाए नहीं ।
आ के गर जाए चला वह, है नहीं वह इश्क ही ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् आशिक, इश्क में भी क्या मज़े ।
यार की कुर्बत भी हासिल, दूर भी और इश्क भी ॥

(१९६) उद्बोधन

राग - तिलक कामोद ताल - दीपचंदी

ज़िन्दगी के चार दिन, चादर को अपनी धोय लो ।
मौका फिर यह न मिलेगा, खुद खुदी को खोय लो ॥
मैल यह चादर पुरानी, साफ होते होएगी ।
कर तरदद पूरा अपना, मैल को तुम खोय लो ॥
चल गुरु के घाट पर, पानी जहां शम्फाफ है ।
दिल लगा सतसंग में तू, साफ दिल तो होए लो ॥
छूट जाएं दाग सारे, तब बने बेदाग तू ।
ओढ़कर चादर यह सुथरी, आना जाना खोय लो ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् बन्दे, कर प्रभु की बन्दगी।
छूट जाएगा जहां से, नेको-बद से दूर हो ॥

(१९७) गज़ल

राग दरबारी कान्हडा ताल - दादरा

हक के मस्ताने हैं हम तो, होशियारी क्यों भला।
हम हुए आज़ाद जग से, दुनिया यारी क्यों भला॥

जिनको हासिल है हुआ न, तड़पते वह भटकते।
यार तो बैठा ही दिल में, इन्तज़ारी क्यों भला॥

तलब में दुनिया की भटकें, नाक माथा रगड़ते।
हम तो खुश अपने ही अन्दर, इन्तजारी क्यों भला॥

छोड़कर जाए कभी न, न कभी छोड़ें उसे।
सामने हर दम दिखे वह, बेकरारी क्यों भला॥

हो रहा शिव ओम् अन्दर, पा लिया है यार अन्दर।
खत्म किस्सा है हुआ अब, यह बीमारी क्यों भला॥

(१९८) ग़ज़ल

राग- नंद ताल- रूपक

दर-बदर भटका किए हम, पर न पाया दर कहीं।
सिर जहाँ हमने झुकाया, दर मिला हमको वहीं॥

दर-बदर भटके हजारों, खोजने को दर तेरा।
पर नहीं मिलता है उनको, है कहीं भी दर नहीं॥

हम भी भटके दर-बदर थे, ढूढते दर थे तेरा।
जब तेरा दर मिल गया, तो मिल गया दिल में यहीं॥

अब यह सोचें दिल में हम हैं, हम यू हीं भटका किए।
ढूढने से भी भला, मिलता कहीं है दर कहीं॥

तीर्थ ऐ शिव ओम् नाहक, हम परेशां ही रहे।
दर तेरा अपने ही दिल था, ढूढते थे हम कहीं॥

(१९९) गज़ल

राग तोड़ी ताल रूपक

जब मिला दिलदार अन्दर, मिल गया वह हर कहीं।
जब नहीं ज़ाहिर था अन्दर, वह कहीं दिखता नहीं॥
वह बसे है ज़र्रा-ज़र्रा, परदा पर अन्दर पड़ा।
जब हटे परदा न अन्दर, वह दिखे कैसे कहीं॥
जिस तरह का दिल बना हो, वैसी दुनिया दीखती।
जब अयां दिल में नहीं वह, न अयां बाहर कहीं॥
आदमी खोजे उसे है, साफ दिल करता नहीं।
गंदगी में गंदगी है, साफ न दीखे कहीं॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् मालिक, शुकरिया सद शुकरिया।
महर मुझ नाचीज पह की, जो दिखा तू हर कहीं॥

(२००) इकतारा

राग - धनश्री ताल - केहरवा

ठुनक ठुनक इक तारा बोले, बिन इक तारा बोले वह।
बिन इक- तारे सुन्दर धुनिया, सोऽहम नाद ही खोले वह॥
न कोई इकतारा दीखत, न ही तार कोई दीखे।
न ही दीखे उँगली हिलती, फिर भी रहा ही बोले वह॥
अनहद नाद करे परकाशित, कोमल चिन चिन छिन छिन वह।
बिन पक्षी के चहक गूंजती, बिन बादल के कड़के वह॥
इक तारा यह अजब अनूठा, बजत बजत ही जाए वह।
मस्त करे उन्मुक्त भक्त को, पीया पीया ही बोले वह॥
तीर्थ शिवोम् बजावनहारे, छुपा तू काहे है बैठा।
इक-तारा तो बोलत रहता, पर न दर्श दिखावे वह॥

(२०१) इकतारा

राग - मिश्रकाफी ताल - केहरवा

बाजे बाजे मन में बाजे, बाज उठा इकतारा ।
मन आनन्दित, मन आलोकित, बजा गगन इक-तारा ॥
मनवा उन्मन होई रहा है, जगत दृश्य बिसराया ।
मन थिर मन ही मन में लागा, देख तमाशा इक तारा ॥
तार मधुर धुन मधुर है बाजे, मधुर बजावनहारा ।
श्याम सुन्दर भी नृत्य करत है, जब है बजता इक तारा ॥
अब तो मन में एक ही धुन है, एक ही भाव समाया ।
रहे बजत, मैं रहूं सुंनत ही, मधुर सुहाना इक-तारा ॥
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरु देवा, कैसी किरपा कीनी ।
मन तन सगला एक कियो है, देत सुनाई इक तारा ॥

(२०२) मीरा प्रेम

राग -भैरवी ताल - केहरवा

थिरकत थिरकत नाचत मीरा, प्रेम-प्रभु गुण गाय रही ।
इक-तारे की कोमल धुन पर, कृष्णहिं प्रेम लुटाय रही ॥
इक तारा बाजत ही जाय, मीरा नाच नचाय रही ।
इक तारे की अन्तर- धुन सुन, मीरा मन हर्षाय रही ॥
न गावत यह रानी मीरा, इक तारा कन्हाई का ।
वह ही रहा गवावत मीरा, भाव-प्रेम उभराय रही ॥
हे इक-तारे ! किरपा मो पर, मैं भी मीरा बन जाऊं ।
नाच-गाय मन झूम उठूं मैं, हर दम हरि गुणगाय रही ॥
तीर्थ शिवोम् दीवानी मीरा, इक-तारे की धुन प्यारी ।
बिसरूं जगत पसारा सारा, बार-बार मन आय रही ॥

(२०३) उद्बोधन

राग - मिश्र पहाड़ी ताल - केहरवा

जिसको न कुछ जग में करना, बैठा बात बनाए वह ।
पाग उछाले टांग को खँचे, ये ही कर्म कमाए वह ॥
जब नाहीं है करना कुछ भी, अवसर गलती कहीं नहीं ।
रहत है देखत गलती जग की, अपना गर्व बढ़ाए वह ॥
ऐसा मनवा ! चंचल मनवा, रहे भटकता जग में ही ।
कभी एक पर, उछलत दूजे, पल भर चैन न पाए वह ॥
अच्छे-बुरे कर्म जग करता, वह संचित सब के करता ।
अच्छे कर्म तो देखे नाहीं, बुरे ही मन में लाए वह ॥
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, जनम का कारण क्यों बनता ।
राम भजन क्यों लागत नाही, भव तो पार कराए वह ॥

(२०४) ग़ज़ल

राग- पीलू ताल - केहरवा

दुनिया के इम्तेहान मैं फेल हो गया ।
जन और ज़र-जमीन का इक खेल हो गया ॥
जो बेगुनाह हो के, गुनहगार बन गया ।
मैं ऐसा बदनसीब हूं, बदनाम हो गया ॥
मुझको कमी कोई नहीं, मुफ्लिल बना हूं मैं ।
न कोई काम है मुझे, बेकाम हो गया ॥
मुद्दत तवील से रहा, भटका किए हूँ मैं ।
दुनिया में आन-जान का इक काम हो गया ॥
तीरथ शिवोम् भूख में कुछ न मिला मुझे ।
भूखा हूँ, भूख में ही यह, अंजाम हो गया ॥

(२०५) गज़ल

राग -भैरवी ताल - केहरवा

जानने जिस एक के ही, जाना जाता है सभी ।
जानने उस एक को, न कुछ वसीला चाहिए ॥
वह है रोशन आप में, खुद आप को करता अयां ।
जो अयां सब को करे, उसको अयां क्या चाहिए ॥
आदमी खुद ही खुदी में, भूल बैठा है उसे ।
जब खुदी मिट जाएगी, खुद आदमी को क्या चाहिए ॥
ऐसे भी हैं लोग दुनिया में, बने जो बदनसीब ।
हो खुदी जब दूर उनकी, फिर उन्हें क्या चाहिए ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् तू, मायल न हो दुनिया तरफ ।
दुनिया ही परदा बना जो, दूर हो क्या चाहिए ॥

(२०६) मन

राग -देस ताल- केहरवा

चित्त का फैलाव दुनिया, चित्त की दुनिया बने ।
जिस तरह का चित्त हो, वैसी ही फिर दुनिया बने ॥
कोसता है आदमी, दुनिया को दुखों के लिए ।
यह न जाने चित्त ही, दुनिया का सुख-दुख है बने ॥
गर भला चाहे तू अपना, चित्त को निर्मल करे ।
जैसा मन वैसी ही दुनिया, खेल है दुनिया बने ॥
राम का ही भजन कर तू, राम का ही ध्यान कर ।
राम-मय जब चित्त तेरा, राम-मय दुनिया बने ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् तू क्यों, दे गिला दुनिया रहा ।
चित्त निर्मल हो न जब तक, शुद्ध न दुनिया बने ॥

(२०७) उद्बोधन

राग -भैरव ताल -केहरवा

जाग उठो, अब जाग उठो है, काहे ग़फ़लत सोय रहा ।
जीवन तो तेरा बीत रहा, तू बेसुध होय सोय रहा ॥
सत-संग करे न संतों का, पाएगा ज्ञान कहां से तू ।
न साधन मिले तुझे कोई, तू घोड़े बेच के सोय रहा ॥
साधन सत-संग को कर ले तू, जो ज्ञान है चाहे आतम का ।
फिर जागत भी तू जाग रहा, जागत जागत ही सोय रहा ॥
इस मारग चलना कठिन बड़ा, तलवार की धार पह चलना है।
तू सावधान हो चलता रह, चलता चलता ही सोय रहा ॥
शिव ओम् उठो, अब जाग उठो, गहरी निद्रा में युग बीते ।
अब तो त्यागो गहरी निद्रा, क्यों चादर तान के सोय रहा ॥

(२०८) वासना

राग- काफी ताल - केहरवा

वासनाएँ ही जगत में, बंध का कारण बनें ।
वासनाओं का ही तब मन इक घना जंगल बने ॥
मन में न जब वासनाएं, आतमा भी मुक्त है ।
मुक्त हो जब मन किसी का, मुक्त तब ही वह बने ॥
वासना को छोड़ प्यारे, वासना छाया ही है ।
जब मिटे यह वासना तब, मुक्त माया मन बने ॥
झटक दे इच्छाएं सारी, ले प्रभु की शरण तू ।
शरण से ही राम मिलते, मुक्ति कारण तब बने ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् मनवा, जग यह माया खेल है ।
वासना न, खेल जाए, मुक्त मनवा तब बने ॥

(२०९) गुरुदेव

राग- पहाड़ी ताल - दादरा

गुरु मिलन का मारग टेढ़ा, मारग मिलन आसान बड़ा।
कठिन चढ़ाई सीधा मारग, ऊंचा बड़ा पहाड़ खड़ा॥
जो पा जाए युक्ति इसकी, उसके लिए कठिन नाहीं।
चढ़ता जाए, बढ़ता जाए, इक दिन जात पहाड़ चढ़ा॥
गुरु करे पहचान राह की, गुरु बताए मारग भी।
गुरुदेव शक्ति परदाता, रुकत नहीं फिर जात चढ़ा॥
गिरता पड़ता, दुख सुख सहता, बढ़ता जाय हँसी-खुशी।
रस्ते का आनन्द लूटता, अड़चन दूर पहाड़ चढ़ा॥
तीर्थ शिवोम् रखो विश्वासा, गुरुदेव दुखहारी जो।
कष्टनिवारण, सरल बनावन, क्यों न मारग जाय बढ़ा॥

(२१०) विरह

राग - माण्ड ताल - केहरवा

प्रेम का खेल निराला देखा, पहुँच गए पर जान न पाए।
साजन तो सन्मुख ही बैठा, फिर भी हम पहचान न पाए॥
मन अपना समझाए रहे हैं, दिल अपना बहलाए रहे हैं।
साजन हमरी ओर ही आए, पर हैं अब तक मान न पाए॥
साजन तो मिलने को तड़पें, पर हम इधर-उधर ही देखें।
फिर कहते साजन न मिलता, मन में हम हैं ठान यह पाए॥
अन्तर- भाव प्रभु मिलने का, हम से पूछे कोई कैसा।
जिसके भाव वही यह जानें, दूजा जग-सुख मानत जाए॥
तीर्थ शिवोम् यह कैसी उलझन, प्रभु सामने पर न दीखे।
हरदम बसा खयालों अन्दर, बार-बार वह याद ही आए॥

(२११) विरह

राग -खमाज ताल - केहरवा

प्रेमी तुमरे द्वारे आई, प्रेम ही मुझको लेकर आयी ।
प्रेम ने ही है भेजा मुझको, प्रेम हृदय में लेकर आयी ॥
हृदय सुगंधित हो उठा है, हवा प्रेम के झोकों से वह ।
तू ही इसको जाने प्रीत,म कि किस लोक से है यह आयी ॥
जलत रही हूँ प्रेम अगन में, तेरे मिलने की ही खातिर ।
जलन हृदय में हरदम उठती, कि तुम पर ही प्रीत है आयी ॥
विरह की यह रात है लम्बी, लम्बी लम्बी होती जाए ।
काटे नहीं कटत यह जाती, दिल में इक पुकार है छाई ॥
तीर्थ शिवोम् हुई मतवारी, कैद हुई जुल्फों में तेरे ।
प्रभु मेरे, अब कृपा करो तुम, याद तेरी ही रहत है छाई ॥

(२१२) ग़ज़ल

राग -भैरवी ताल - केहरवा

इश्क तुम ने क्या किया, मेरा कबाड़ा कर दिया ।
मुझको तो कुछ न मिला, बस इक इशारा कर दिया ॥
क्या कहूं ऐ इश्क तुमको, क्या किया है मेरे साथ ।
दिल भी अपना न रहा, मेरा उजाड़ा कर दिया ॥
इश्क को देखा जगत में, दनदनाते हर जगह ।
मौका जब आया मिलन का, तो किनारा कर गया ॥
इश्क ही बन्दा बना है, इश्क ही भगवान भी ।
जब लगा यह भेद खुलने, तो नकारा कर दिया ॥
तीर्थ ऐ शिव ओम् न कर, इश्क पर तू एतबार ।
इश्क इक ऐसी बला है, दिल बेचारा कर दिया ॥

(२१३) गज़ल

राग- मिश्र पीलू ताल - केहरवा

कि दिल चाहता नहीं, कभी भी मुस्कराने को ।
न चाहता मन ही यह है, कभी आंसू बहाने को ॥
कभी दिल में भरा गम है, कभी दिल शादयां बनता ।
न रोने को है दिल करता, न करता आज़माने को ॥
है कोई बात जो कि रोक देती, जी को करने को ।
वरना दिल यह चाहता है, उलट दूं मैं ज़माने को ॥
यह सुन मुमकिन ही नहीं मुझको, कि जाऊं भूल मैं तुझको।
नहीं तो दिल तो चाहता है, तुझे बस भूल जाने को ॥
हँसी आँखें तेरी दिलबर, हँसी आँसू भी तेरे हैं ।
यह जी इक चाहता है बस, इन्हीं में डूब जाने को ॥
कि मैं शिव ओम् तीर्थ ऐ, भूलूं किस तरह तुझको ।
तेरे नाज़ो-अदा को ही है, जी करता उठाने को ॥

(२१४) ग़ज़ल

राग यमन कल्याण ताल- दादरा

दिल के दुख वह पूछते, पहले ही रुक गए ।
पर गिले, मेरी ज़ुबां पर आते आते रुक गए ॥
मैंने चाहा कि बया कर दूं, मैं हाल दिल अपना ।
मगर बात करते करते, लब ही रुक गए ॥
छाया को मेरी देखकर, मुझ पह हुए फिदा ।
पर राज़ जब खुला, तो शरमा के रुक गए ॥
अंजाम क्या मोहब्बत का, कोई जानता नहीं ।
हकीकत बयान करते, करते ही वह रुक गए ॥
तीर्थ शिवोम् कर ही दे, दिल में कि जो तेरे ।
तुम अर्ज़ करते करते ही, पहले ही रुक गए ॥

(२१५) नाम

राग - अहीरी - तोड़ी ताल - केहरवा

तुमरी किरपा बिन हे प्रभुजी, नाम न सिमरा जाए ।
जिस पर किरपा तेरी होए, वो ही यह सुख पाए ॥
जो प्राप्त हो गुरु अनुग्रह, तो मन प्रेम समावे।
तो ही मन चरणों में लागे, तो ही सिमरन होए ।।
गुण गाए से मन परकाशित, सहज भाव उपजाए ।
अन्तर तम है नाशे तब ही, नाम ही सहज समाए ॥
तेरी किरपा होवे तब ही, यह सब कुछ हो पाए ।
नहीं तो मनवा भटकत भटकत, माया माहीं समाए ।।
तू ही सारे जग का करता, मौज तेरी ही होती ।
जैसा चाहे वैसा जग में, इकदम ही घट जाए ॥
तीर्थ शिवोम् विनय प्रभु आगे, नाम दान मोहे दीजो ।
तेरा नाम ही सिमरन होए, नाम ही मन में भाए ॥

(२१६) नाम

राग-झिंझोटी ताल-केहरवा

सद्गुरु मेरे नाम- प्रेम प्रगटाया ।
रैन दिवस न विसरुं ताहे, हिरदय माहीं समाया ॥
नाम सुने और नाम जपे से, मन विश्राम है पाता।
राम नाम मेरे मन भावे, दूजा नहीं बसाया ॥
अमृत नाम पियूं हर वेले, नाम ही मन त्रिपतावे ।
राम नाम की डोर पकड़ के, भवसागर निपटाया ॥
अन्तर ज्ञान नाम परकाशित, सद्गुरु किरपा कीनी ।
राम नाम जीवन आधारा, बंधन सभी छुड़ाया ॥
तीर्थ शिवोम् कृपा गुरुदेवा, दान नाम का दीना ।
अन्तर बाहर हुआ आलोकित, विपदामुक्त कराया ॥